मीना

लेखक—

राजाराम अग्रवाल

प्रकाशक—

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४१९, अहियापुर

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण] नवम्बर १९४२ [मूल्य १।)

प्रकाशक—

सुशीलकृष्ण शुक्ल

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४१९ अहियापुर, इलाहाबाद

मुद्रक—

विश्वम्भरनाथ

विश्ववाणी प्रेस,

साउथ मलाका, इलाहाबाद

प्रेमोपहार

सेवा में, मिस् कानेकर
Jr. B.A. D.A.V.
College, Sholapur

विनीत,

दया, धर्म से पूर्ण हों, मन में शुद्ध विचार।
दीन-हीन का दुःख हरें, बनकर परम उदार॥

आशा नहीं विश्वास है, होगा यह स्वीकार।
प्रेमी-जन की भेंट है, सादर प्रेमोपहार॥
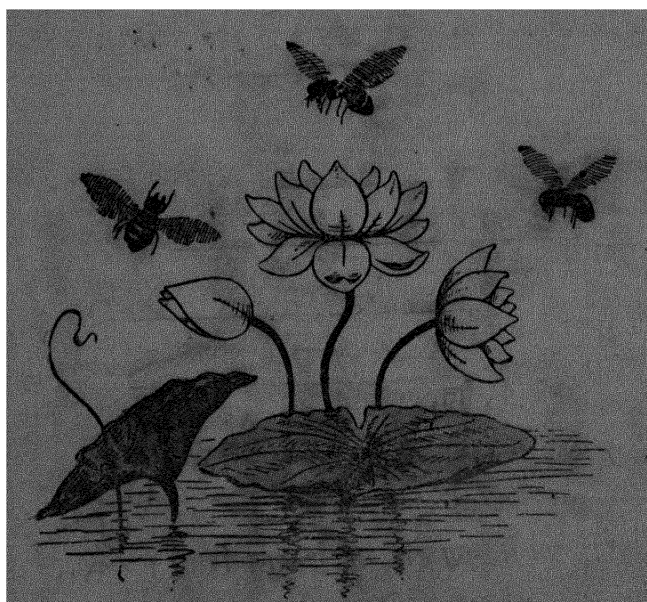
मीना

पहला परिच्छेद

परम पिता परमेश्वर की असीम कृपा से दौलत उनके घर मानों फूट पड़ी थी। कुंवर सुरेन्द्रसिंह ही उसके एकमात्र अधीश्वर थे। सोलह वर्ष की उमर में उनकी माता का देहान्त हो गया था और जब बीस वर्ष के हुए तब उनके पिता जी भी उन्हें, इतनी बड़ी ज़मीदारी—धन-दौलत, और ठाठदार अट्टालिका का उत्तराधिकारी बना इस असार संसार से चल बसे। सगे सम्बन्धियों में और कोई था नहीं--केवल एक मामा थे, सो भी दूर वहां से किसी अन्य शहर में रहते थे।

कुंवर साहब इस समय चौबीस बरस के सुन्दर, स्वस्थ, और हृष्ट-पुष्ट नवयुवक थे। हल्की श्यामलता लिये हुए मुखाकृति गोल भरी हुई, और आकर्षणमयी थी—आंखें बहुत बड़ी न होते हुए भी रसीली और जवानी की नई उमंगों से परिपूर्ण थीं। स्वभाव—शान्त, गम्भीर, विचारशील, और उदारतापूर्ण था। अण्डर ग्रेजुएट होते हुए भी बी० ए० का पूरा कोर्स घर पर ही खत्म कर लिया था। परीक्षा देनी जरूरी नहीं समझी

इसलिये ग्रेज्युएट होने के बदले अण्डर-ग्रेज्युएट ही रह गये। यही बहुत था।

शिकार खेलने में एक नम्बर के शौक़ीन थे। काम-काज से बेफ़िकर हो—बन्दूक़ उठा, घोड़े पर चढ़, चल देते रायपुर के उस मनोरम और घने जंगल को जिसके तीन तरफ़ बड़े-बड़े वृक्ष, लम्बी घास, और विविध प्रकार की जड़ी-बूटियों से लदी हुई पहाड़ी थी। किन्तु एक ओर उसके कल-कल-नाद करता हुआ श्वेत-स्वच्छ फेनोत्पादक झरना अपने पूरे वेग से बहता हुआ दक्षिण को ओर चला जा रहा था। सर्पाकार में झरने के उबलते हुए फेन पहाड़ी पर खड़े होकर देखते ही बनते थे। घने जंगल की उस हरियाली में सरिता के उबलते हुए भाग—ठीक उस उल्टे हुए सांप की तरह मालूम होते थे जिसका ओर छोर कहीं खो गया हो।

एक दिन, जब कि आषाढ़ महीने की चिलचिलाती हुई धूप नभ-मण्डल से उतर कर भूमण्डल की प्रत्येक वस्तु को अपनी प्रखरता से झुलसाये दे रही थी—कुंवर साहब अपने घोड़े पर चढ़े हुए निरुद्देश्य भाव से जंगल के बीच से बढ़े चले जारहे थे। भरी हुई बन्दूक़ इस समय भी उनकी पीठ से लटक रही थी। शाम का वक़्त था—प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ-साथ भयंकर हिंसक जीवों की भी उस जंगल में कोई कमी नहीं थी। यत्र-तत्र सर्वत्र ही ऐसे जीव वहां भरे पड़े थे।

सरिता के किनारे वे मन्थर गति से आगे बढ़े चले जारहे थे। मन शान्त था, आँखें प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य को निरख रही थीं। कहीं-कहीं कोई मोर नाचता हुआ दिखाई दे जाता था, दूर कहीं कोई हरिण चौकड़ी भरता हुआ इधर से उधर को भाग जाता, घोड़े की टापों की आवाज़ से पास ही की झाड़ी में बैठा हुआ ख़रगोश कान खड़े किये झांकता हुआ दिखाई देता—पर कुंवर सुरेन्द्रसिंह इन सब पर अपनी बन्दूक़ की गोलियां ख़ाली न किया करते। वे तो चुन-चुन कर उन्हीं जानवरों को मारा करते, जिनसे उन्हें मानव जाति को हानि पहुँचने का ख़तरा हुआ करता।

चलते-चलते सहसा उनके घोड़े ने कान खड़े कर लिये और वहीं ठिठक गया। कुंवर साहब चौंके—यद्यपि यह उनके लिये नई बात नहीं थी। इसी घोड़े और बन्दूक़ के सहारे वे न जाने कितनी बार इस जंगल की चप्पा-चप्पा भूमि का भ्रमण कर चुके थे, किन्तु घोड़े का ठिठकना और उसका कान खड़े करना ही मानों किसी आने वाले ख़तरे की सूचना होती थी। तुरन्त ही सावधान होकर उन्होंने बन्दूक़ को अपने हाथ में ले लिया और समय की प्रतीक्षा करने लगे।

हठात् दो तीन बड़ी झाड़ियों के पीछे से उन्हें एक आवाज़ सुनाई दी। जान पड़ा कोई स्त्री किसी हिंसक जीव के भय से चिल्ला पड़ी हो—साथ ही किसी बच्चे के रोने की आवाज़ भी सुनाई दी। करुण-क्रन्दन सुनना कुंवर साहब की आदत नहीं

थी। किसी अज्ञात आशंका से उनके शरीर में एक विचित्र स्फूर्ति का संचार हुआ—विद्युत-गति से उन्होंने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया और क्षण भर में ही दोनों बड़ी झाड़ियों को पार कर गये। ओह! सामने ही एक बाघ खड़ा हुआ इनकी तरफ़ देख रहा था। उससे कुछ दूर हटकर बड़े पेड़ की आड़ में एक सुन्दर रमणी अपने नवजात शिशु को लिये मृत्यु के कराल गाल से मुक्त होने की चेष्टा कर रही थी।

'धांय-धांय' करके दो गोली छूटीं और वह बाघ एक बार उछल कर ज़मीन पर लोटने लगा। रमणी ने कृतज्ञतापूर्ण आँखों से उन्हें देखा और तब पेड़ की आड़ से निकल उनकी तरफ़ को बढ़ती हुई बोली—

"ओह! आप हैं कुवर साहब!! ठीक समय पर पहुंचकर इस अभागिनी की रक्षा की।"

कुंवर साहब ने देखा—रमणी सुन्दर थी, सुशील थी। वेश-भूषा से सुशिक्षित तथा कुलीन प्रतीत होती थी। कुंवर साहब के नाम से सम्बोधन करने से जान पड़ता था कि वह उनसे परिचित भी थी, किन्तु आश्चर्य था उन्हें कि वहां वह कैसे भटक पड़ी? और फिर यह नवजात शिशु! इतनी सुन्दर कोमलाङ्गी! कौन है यह? देवबाला अथवा बनदेवी! कोई भी हो—प्रकृति के इस हरित संसार में धानी रंग की साड़ी के बीच छिपा हुआ वह अनुपम सौन्दर्य—तिस पर पश्चिम दिशा से सरिता के निर्मल जल पर पड़ता हुआ सूर्य की किरणों का

सुनहरा प्रतिबिम्ब ! क्या यह छबि भुलाये से भी कभी भूली जा सकती थी ? क्षण भर तक कुंवर साहब हतबुद्धि हो एकटक उसकी ओर देखते रह गये।

किन्तु शीघ्र ही उन्हें अपनी अवस्था का ज्ञान हुआ। उनकी यह हरकत क्या शिष्टाचार के विरुद्ध नहीं थी ? मन ही मन लज्जित हो—संभल कर तुरन्त ही उन्होंने उत्तर दिया—"आप ऐसे भयानक बन में······"

"हां यह एक लम्बा विषय है जिसे आप बाद में भी जान सकेंगे। पहले आप मुझे किसी सुरक्षित स्थान में पहुँचा देने का कष्ट करें। कुछ समय के लिये क्या मैं आपका ही आतिथ्य ग्रहण न कर सकूंगी ?"

कुंवर साहब उसकी वागपटुता एवम् चपलता पर हैरान रह गये। तुरन्त ही कोई उत्तर देते उनसे बन न पड़ा। जान पड़ता था ऐसी अनहोनी बात उसके मुख से सुनने की उन्हें आशा ही नहीं थी। अपने को बहुत संभाल और उद्वेजित हृदय को सुसंयत कर उन्होंने पूछा, "क्या आप मेरे यहां रहना चाहती हैं ?"

उत्तर मिला—"हाँ, कुछ समय के लिये मेरी यही इच्छा है।"

उन्होंने पूछा—"लेकिन क्यों ? ऐसा करके आप क्या मतलब सिद्ध करना चाहती हैं ?"

"ओह ! आप तो बहुत जल्दबाज़ मालूम होते हैं।" रमणी ने गोद के बच्चे को ठीक से संभालते हुए कहा, "भूल गये हैं

शायद आप इतनी जल्दी। मैंने अभी क्या कहा था आपसे—पहले मुझे किसी सुरक्षित स्थान में ले चलिये, जहां मैं निरापद बैठकर अपने चित्त और शरीर को स्वस्थ कर सकूं। अभी मैं बहुत घबराई हुई हूँ। आपकी कोठी में ही मैं अधिक सुरक्षित रह सकूंगी, वहीं ले चलिये। मेरे कारण आप पर कोई विपत्ति नहीं आयेगी विश्वास कीजिये।"

कुंवर साहब की अजीब हालत थी। यूं आपत्ति-विपत्ति में वे हताश होने वाले जीव नहीं थे; किन्तु अकारण ही किसी अज्ञात युवती को जिसके पास एक छोटा बच्चा भी हो, बिना उसके आचार-विचार अथवा व्यवहार की यथेष्ट जानकारी प्राप्त किये वे भला कैसे उसे अपने घर ले जाने का साहस कर सकते थे। युवती के मुख पर कौमार्यता के लक्षण स्पष्ट रूप के परिलक्षित हो रहे थे—तो फिर यह बच्चा क्या इसका नहीं है? अजीब रहस्यमयी युवती है ये! उसके बारे में जितना अधिक वे सोचते उतना ही अधिक समस्या में वे फंसते जाते। उन्हें चुप देख युवती ही पुनः बोली—

"बड़े डरपोक हैं आप तो। आफ़त में फंसी हुई एक युवती की सहायता भी नहीं कर सकते आप? क्या यही मानव जाति की मानवता है? क्या इसी का नाम पुरुषार्थ है?"

पुरुषार्थ को कलङ्कित करने वालों के कुंवर साहब घोर विरोधी थे। अपने ही पुरुषार्थ पर कोई छींटे दे इसे वे कब सहन करते। युवती की बातों ने उन्हें उत्तेजित अवश्य कर दिया होता

यदि वह उनकी शरण में आई हुई न होती। मन की व्यग्रता को दबाकर वे बोले—

"आपको साथ ले चलने में मुझे कोई भी एतराज़ नहीं है। लेकिन आप जानती हैं दुनिया कैसी है? मेरे घर में आपको देखकर लोग क्या ख्याल करेंगे?"

"ओ आप दुनिया से डरते हैं? तब निश्चय ही आप कुछ नहीं कर सकते—बल्कि यदि आपको निरा निकम्मा ही कहा जाये तो इससे आपकी ख्याति को विशेष कोई हानि नहीं पहुँचेगी।"

युवती के कटु शब्दों ने उन्हें आपाद-मस्तक मानों एकदम से झुलसा दिया हो। आँखें रक्तवर्ण हो उठीं तथा मुख पर लालिमा छा गई—किन्तु इतने पर भी वे युवती के उत्तर का प्रत्युत्तर कड़े शब्दों में नहीं दे सके। इच्छा रखते हुए भी वे उसे पूरी न कर सके। न जाने उसमें कौन ऐसा आकर्षण आ गया था कि जिसके वशीभूत हो कर कुंवर साहब जैसा स्वाभिमानी भी परास्त हो गया। उन्होंने चेष्टा तो इतनी की थी उसे टालने की—कि यदि उस की जगह कोई और होती तो सम्भवतः दो चार बातें सुनकर ही फिर वह उनके घर जाने के लिये आग्रह करने का साहस ही न करती, परन्तु वह थी कि एकदम से उन्हें चिपकी ही जारही थी।

बड़ी कठिन समस्या थी। इस उलझन को सुलझाना उनके लिये एक तरह से असंभव ही हो गया। उसे साथ ले जाने में

उन्हें लोक-लज्जा का भय था और न ले जाने में पुरुषार्थहीन कायरों की तरह एक शरणागत के कर्त्तव्यों से विमुख होना पड़ता था। बड़ी मुश्किल में जान थी।

बड़ी कठिनाई से हृदय के समस्त विकारों को दबा कर उन्होंने पूछा, "अच्छा अपना नाम तो आप......" बीच ही में वह बोल पड़ी—"मुझे आप मीना के नाम से पुकार सकते हैं।"

"मीना" विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए उन्होंने पूछा—"यह नाम तो बहुत सुन्दर है। तो क्या आप दक्षिण भारत की रहने वाली तो नहीं हैं?"

उसने कहा—"अभी आप जो कुछ भी समझें ठीक है—किन्तु अपने विचारों का विकास न करके आप जल्दी से जल्दी मुझे इस भयानक जंगल से निकाल कर सीधे अपने घर ले चलें तो यह बहुत अच्छा होगा। आप देख रहे हैं मेरी गोद में एक नवजात बच्चा है—यदि किसी सुरक्षित स्थान में पहुँच कर शीघ्र ही इसकी उचित व्यवस्था न की गई तो बहुत संभव है इसका जीवन बचाना ही असम्भव हो जाये और तब इस पाप के भागी आप ही होंगे एकमात्र।"

पाप के नाम से ही कुंवर साहब सिहर उठे। उसे घर ले चलने का उन्होंने मन ही मन निश्चय कर लिया। पहले उन्होंने सोचा रात में ले चलना ठीक होगा जिससे कोई देखे ना—लेकिन क्यों? यह बात कोई छिपी थोड़ी ही रहेगी। छि:

कैसी मनोवृत्ति है यह ? जब कोई पाप ही नहीं तब डरना क्या ? लोग हँसेंगे तो हंसने दो—टीका-टिप्पणी करेंगे तो करने दो। दुनिया तो ऐसी ही है—इससे डरकर क्या अपना कर्त्तव्य भी भूल जाना चाहिये ?

अब अधिक सोचने की कुंवर साहब ने कोई जरूरत न समझी। तुरन्त ही अपने घोड़े की बागडोर थामे वे उस युवती को साथ लिये अपने घर की तरफ़ को चल दिये।

दूसरा परिच्छेद

घर पहुंच कर कुंवर साहब ने मीना के रहने के लिये उचित व्यवस्था कर दी। अपनी शानदार कोठी के दो सुसज्जित कमरे उन्होंने उसके लिये दे दिये तथा खाना बनाने वाली दासी रधिया को भी सेवा टहल के लिये उसके साथ कर दिया। मीना के रहने का उचित प्रबन्ध कर देने के बाद उन्होंने सन्तोष की एक गहरी साँस खींची। परन्तु घर आते ही रधिया दासी ने जिस दृष्टि से उन दोनों को देखा था, उससे न केवल उनके दिल पर एक हल्का धक्का ही लगा था प्रत्युत वे उसकी उस संदिग्ध दृष्टि से सिहर भी उठे थे। वे जान गये थे कि रधिया उन्हें तथा मीना को सन्देह की दृष्टि से देख रही है। जब घर की ही इतनी पुरानी दासी के मन में सन्देह उत्पन्न हो गया तो फिर बाहर वालों की तो बात ही दूसरी है।

अस्तु कुछ भी हो एक बार क़दम बढ़ा कर पुनः पीछे हटना सुरेन्द्रसिंह जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ के वश की बात नहीं थी। शरण में आये हुए की दुर्दशा देखना उनका स्वभाव नहीं था। मीना पतिता हो, चरित्रहीना हो,—भले ही वह एक वैश्या ही क्यों न हो; जब उसने उसका आश्रय ग्रहण किया है तो वे उसकी हर आपत्ति में सहायता करेंगे—यही उनका दृढ़ निश्चय था। किन्तु उन्हें उसके स्वभाव पर थोड़ा बहुत क्रोध ज़रूर

आ रहा था। जब वे उसके संकट-काल में हर प्रकार की सहायता करने को तैयार हैं तो वह इन पर विश्वास क्यों नहीं करती ? यह कैसी भिन्नता समाई है उसकी बुद्धि में ? अपना भेद वह इस तरह छिपा क्यों रही है ? आखिर यह है कौन ? कैसी रहस्यमयी युवती है यह मीना भी !

उसका हाल जानने के लिये वे एक बारगी ही व्यग्र से हो उठे। तुरन्त उठकर उसके कमरे की ओर चल दिये और दरवाज़े पर पहुंच कर उन्होंने बाहर से ही आवाज़ दी—"मीना !"

यद्यपि रात अधिक नहीं बीती थी तो भी अन्य कोई काम न होने के कारण वह अपने पलंग पर पड़ी हुई कोई किताब पढ़ रही थी। आवाज़ सुनते ही वह तुरन्त उठ बैठी और बोली—"कहिये।"

"क्या मैं भीतर आ सकता हूँ ?" बाहर से ही उन्होंने पूछा।

"हां हां, आइये ना।" कहती हुई वह उनके स्वागत के लिये आगे बढ़ी।

कमरे के भीतर प्रवेश करते हुए उन्होंने कहा, "मेरे आने से अवश्य ही आपको कष्ट हुआ होगा।"

वह बोली—"कष्ट मुझे तो नहीं शायद आपको ज़रूर हो रहा होगा। मेरा भेद जानने के लिये आप विशेष उत्सुक जान पड़ते हैं। आइये, बैठ जाइये न कुर्सी पर।"

उसी के सामने एक दूसरी कुर्सी पर बैठते हुए कुंवर साहब बोले—"आपका पूरा हाल जानने के लिए मेरा उत्सुक होना स्वाभाविक ही है। मैं अभी क्या जानता हूँ आपके बारे में? केवल नाम भर ही तो बताया है आपने। सो भी भगवान जाने ठीक है या यूं ही ग़लत नाम बता कर आपने मुझे······"

"ओहो! इतना अविश्वास करते हैं आप मेरा?" कुछ रुष्ट हो कर वह बोली।

कुंवर साहब यही चाहते थे। उन्होंने उसे मनाने की कोशिश नहीं की प्रत्युत और भी उत्तेजित करने के अभिप्राय से बोले—"बिगड़ने की बात नहीं है। आप स्वयं सोच सकती हैं,—जब आप मेरा विश्वास न करके मुझे अपना भेद नहीं बता रही हैं तब मैं ही कैसे आप पर किसी तरह का भरोसा कर सकता हूँ? क्या यह तत्वहीन बात नहीं है आपकी?"

"तत्वहीन बात मेरी नहीं बल्कि आपकी ही है।" गंभीरता-पूर्ण दृढ़ता के साथ उसने उत्तर दिया। वह बोली—"क्या मनुष्य परिस्थिति वश कभी-कभी ऐसा करने के लिये मजबूर नहीं हो जाता? किसी का भेद ज़बर्दस्ती जानने की अनधिकार चेष्टा करना—क्या यह मानवता के नाते आपका मेरे प्रति अन्याय नहीं है? और फिर जब कि मैं आपको यह विश्वास दिला चुकी हूँ कि आपका मेरे कारण कोई अनिष्ट होने की संभावना नहीं—फिर काहे को आप इतना घबराये जा रहे हैं?

मन को चंचलता के वेग से रोकना ही सच्चे पुरुष का विशेष गुण है।"

ठीक ही तो कहा था उसने। किन्तु इससे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। कुछ खिन्न-चित्त से उन्होंने उत्तर दिया—"यह दुनिया ही बड़ी विचित्र और रहस्यमयी है। आपको मालूम होना चाहिये, हमारे जीवन में कभी-कभी कई ऐसी घटनाएं घटित हो जाती हैं जो आकस्मिक होते हुए भी सारहीन नहीं होतीं, कल्पनातीत होते हुए भी सत्य की कहीं अधिक पुट उनमें विद्यमान होती है। ऐसी आकस्मिक घटनाओं से चाहे वे निरी काल्पनिक हों अथवा स्वाभाविक, हमें हताश नहीं हो जाना चाहिये प्रत्युत डट कर उनका मुक़ाबला ही करना चाहिये। हो सकता है आप भी किसी ऐसी ही घटना का शिकार हुई हों किन्तु इससे क्या आप अपना आत्म-गौरव भी खो देना चाहती हैं? पूर्ण स्वतन्त्रता को न अपनाकर क्या पराधीनता को ही आप अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य बनाना चाहती हैं? आख़िर कब तक यह जीवन आपके लिये रुचिकर हो सकता है?"

"जब तक परिस्थिति पुनः मेरे अनुकूल नहीं हो जाती।" मीना ने उत्तर देते हुए कहा—"बहुत संभव है अल्प-समय में ही मैं अपनी इस बेबसी को तिलांजली देकर पुनः पहले जैसी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के योग्य हो जाऊँ—और यह भी संभव

हो सकता है कि दीर्घ-काल तक भी मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त न हो सके। वास्तव में यह समय मेरे लिये बड़ा ही नाज़ुक है।"

"विचित्र विडम्बना है यह तो।" अनायास ही कुंवर साहब के मुख से निकल गया। इस मामले की गहराई तक पहुंचने में वे अपने को बिलकुल ही असमर्थ समझने लगे। अपने ऊपर कोई विपत्ति आने की उन्हें तनिक भी चिन्ता नहीं थी, उन्हें भय था तो केवल उस युवती का ही। वे यह भी नहीं जानते थे कि वह कौन है। कहाँ की रहनेवाली है? अविवाहिता है अथवा विवाहिता? यदि अभी इसका विवाह नहीं हुआ है तो फिर यह बच्चा किसका है?

बहुत सी बातें उनके मस्तिष्क में घूम गईं परन्तु निष्कर्ष कुछ भी न निकल सका। अन्त में बहुत कुछ सोच विचार कर उन्होंने पूछा—"यह बच्चा किसका है?"

"अपने मां-बाप का"—लापर्वाही से उसने उत्तर दिया।

"मां शायद तुम हो और बाप—बाप······" आगे वे कुछ स्थिर न कर सके कि क्या कहें? अतः चुप हो जाना ही ठीक समझ कर वे एकटक उसकी ओर देखते रह गये।

कुंवर साहब की दशा पर वह मुस्कुराये बिना न रह सकी। बड़ी नम्रता से उसने उत्तर दिया—"आपका अनुमान ग़लत निकला। मैं इस बच्चे की मां नहीं हूँ।"

"तो फिर? क्या आपकी शादी हो चुकी है?" उन्होंने उत्सुकता से पूछा।

"नहीं। अभी मैं अविवाहिता ही हूँ।" सरल दृष्टि से देखते हुए उसने उत्तर दिया।

"इसके मां-बाप इस समय कहां हैं? उन्होंने पूछा।

एक निःश्वास छोड़ कर वह बोली—"इसकी मां शायद अब संसार में नहीं है और बाप के बारे में मैं स्वयं भी कुछ नहीं जानती। मैंने उसे अभी तक देखा भी नहीं है।

"कैसी विचित्र बात है।" छिपी हुई तीव्र दृष्टि से देखते हुए उन्होंने उसके चेहरे से यह जानना चाहा कि वह जो कुछ कह रही है वह वास्तव में सच भी है या झूठ ही उन्हें बनाया जा रहा है—किन्तु ध्यान से देखने पर भी उन्हें उसके चेहरे पर सरलता के छाये हुए चिन्हों के अतिरिक्त और कुछ भी मालूम न हो सका। उन्हें मालूम हो गया कि इस समय वह जो कुछ कह रही है सच ही है। इन बातों में झूठ बोलने से उसका मतलब भी क्या सिद्ध हो सकता था।

कुछ क्षण ठहर कर उन्होंने पूछा—"यह बच्चा आपको कहां मिला?"

"यही तो सारे झमेले की जड़ है।" अस्फुट ध्वनि में उसके मुख से निकला और तब कुछ संभल कर उसने उत्तर दिया—"इसके बारे में अभी आप मुझसे कुछ न पूछें। समय आने पर सब कुछ आपको स्वयं ही मालूम हो जायेगा। मैं एक बार आपको फिर यह विश्वास दिला देना चाहती हूँ कि मैं अनायास ही इस भीषण परिस्थिति में फंस गई हूँ अन्यथा मेरा इस मामले

से कोई भी घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है—न किसी भयानक अभियोग की मैं अपराधिनी ही हूँ। हां घटनावश इस समय यह जरूर कहा जा सकता है कि याद अभी यह भेद किसी को बताया जायेगा तो सुनने वाला मुझे न केवल चरित्र-हीना ही कहेगा बल्कि भारी से भारी अभियोग भी मेरे ऊपर लगाने से नहीं चूकेगा। वास्तव में देखा जाये तो मेरा इसमें कुछ भी दोष नहीं है।"

कुंवर साहब को इस रहस्य का कुछ-कुछ आभास मिलने लगा था किन्तु फिर भी मन उस पर जमता न था। उसे सान्त्वना देते हुए वे बोले—"आप यदि वास्तव में निर्दोष हैं तो आप का कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मैं यथा-शक्ति आपकी सहायता करने को तैयार हूँ। क्या ही अच्छा होता यदि आप मुझ पर विश्वास करके पूरा भेद मुझे बता देतीं।"

वह बोली—"धीरे-धीरे सब मालूम हो जायेगा आपको। अभी आप केवल इतना ही समझिये कि मैं क़तई इस मामले में निर्दोष हूँ। यदि दुर्भाग्य वश कोई आपत्ति ऐसी आ भी जाये मेरे ऊपर तो भी आप भूल कर भी मुझे दोषी न समझियेगा; भले ही सारी दुनिया एक स्वर से मुझे ही अपराधिनी पुकार उठे, किन्तु आप स्वप्न में भी ऐसा न सोचियेगा।"

"ऐसा ही होगा—"दृढ़ शब्दों में कुंवर साहब ने उत्तर दिया और चुपचाप उसकी बातें सुनने लगे।

उसने पुनः कहना शुरू किया—"मेरे जीवन में अभी एक इससे भी भारी तूफ़ान आने वाला है, जिसके लिये मैं अभी से

तैयार हूँ। उस तूफ़ान में ज़रा भी बिचलित होने पर बहुत संभव है मुझे अपने इस अमूल्य जीवन से भी हाथ धोना पड़े, किन्तु यदि मुझे आप जैसे निर्भीक और दृढ़-प्रतिज्ञ की ज़रा भी सहानूभूति अथवा सहायता प्राप्त होती रही तो मुझे पूर्ण आशा है कि मैं बहुत शीघ्र ही इस संकटापन्न जीवन से मुक्त हो कर पुनः एक बार सुख पूर्वक दिन व्यतीत करने के योग्य हो सकूंगी। बोलिये, क्या आप कर सकेंगे इतनी कृपा ?

वे बोले—"अवश्य ही यदि आपको मेरी सहायता की ज़रूरत पड़ी तो मैं उसके लिये सदैव ही प्रस्तुत रहूँगा—भले ही इसमें मुझे भारी से भारी क्षति क्यों न उठानी पड़े।"

"मुझे आप से ऐसी ही आशा थी।" प्रसन्नता से मीना का मुखमण्डल प्रभात कमल के समान एकबारगी खिल उठा। खुशी के आवेग में वह बोल उठी—"ओह! आप कितने उदार हैं! कितने दयावान और पुरुषार्थी हैं! वास्तव में जैसा आपके बारे में दो चार लोगों से सुना था उससे भी कहीं अधिक बढ़ चढ़कर आपको देख रही हूँ। आप का नाम सुन कर ही इस आपत्ति के समय, मैं आपके पास आ रही थी कि उस भयानक बन में फंस गई और ऐन वक्त पर पहुँच कर, आपने ही मेरी रक्षा की। वास्तव में आपका साहस सराहनीय है।"

"बस बस रहने दीजिये, इतनी ही तारीफ़ बहुत है।" मुस्कुराते हुए कुंवर साहब बोले। इस समय उनकी दृष्टि एकटक

मीना के चेहरे पर जमी हुई—उसके गौर-लालिमा-युक्त सौन्दर्य का सुरापान कर रही थी। मीना की आँखें उनकी आँखों के साथ टकराईं—दोनों की आँखों में यौवन की मादकता छलक आई। दोनों का दिल किसी छिपी हुई लहर से गुदगुदा उठा—शरीर में बिजली सी दौड़ गई और दूसरे क्षण ही दोनों की आँखें स्वतः ही नीचे को झुक गईं—मानों दोनों ने अपनी-अपनी पराजय स्वीकार कर ली।

अपने को सुसंयत करके कुंवर साहब उठते हुये बोले—"अब आप आराम करें मैं भी जाता हूँ।" कहते-कहते ही वे कमरे के बाहर निकल आये और एक लम्बे बराण्डे को पार करके चुपचाप आकर अपने कमरे में पड़ रहे। मीना भी उठी और दर्वाज़ा भीतर से बन्द करके अपने पलंग पर पड़ रही।

तीसरा परिच्छेद

कुंवर साहब की लाइब्रेरी भी देखने योग्य एक चीज़ है। प्राचीन ग्रन्थों को एकत्र करने का उन्हें एक चस्का-सा पड़ गया था। कई अलमारियों में पुराने और आधुनिक इतिहास भरे पड़े थे। धार्मिक तथा दार्शनिक ग्रन्थों की भरमार थी। दुनिया भर के भिन्न-भिन्न विषयों पर उन्होंने पुस्तकें भी चुन-चुन कर संग्रह की थीं। उनका साहित्य-प्रेम वास्तव में सराहनीय था अप्राप्य पुस्तकें भी उनके संग्रहालय से उपब्लध हो सकती थीं।

कुंवर साहब के घनिष्ट मित्रों में से तो कोई न था, यूं मेल-जोल और प्रेम-व्यवहार वह प्रायः हरेक से ही रखते थे। आज-कल की मित्रता किस सांचे में ढली हुई होती है—यह बात वे भली भाँति जानते थे। ऐसे स्वार्थी मित्रों की यद्यपि कोई कमी नहीं थी तदपि वे इस प्रकार की मित्र-मण्डली से प्रायः हर समय ही सावधान रहते और यथा साध्य ऐसे लोगों से अपने को बचाये रखने की ही धुन में रहते। आज-कल के वायु-मण्डल के अनुसार ही वे बने हुये थे पूरे।

इतनी बड़ी दुनिया में धीरेश के सिवा उन्हें और किसी पर भी विश्वास नहीं था। वह भी उन्हीं की तरह माता-पिता रहित एक अनाथ नवयुवक था। इनके पास तो धन संपति सभी कुछ था, पर वह बेचारा तो एकदम से निर्धन और दरिद्र ही था—

कोई सहारा भी ऐसा न था कि जिसके आधार पर कुछ दिनों तक निर्भर ही रह सके। किन्तु ग़रीब होते हुये भी धीरेश ने कभी किसी के आगे हाथ नहीं पसारा—उसका यही गुण कुंवर-साहब को पसन्द था।

रायपुर की म्युनिसपैलिटी के चुंगी विभाग में वह क्लर्क था। तीस रुपया मासिक मिलता था—इसी में वह सन्तुष्ट था। उसकी आवश्यकता के मुताबिक़ यह वेतन उसके लिये काफ़ी था; फिर उसे दूसरों के आगे किसी चीज़ के लिये हाथ फैलाने की ज़रूरत भी क्या थी? कुंवर साहब और धीरेश दोनों ही कुछ समय तक एक स्कूल में पढ़े थे; इसी कारण दोनों में विशेष घनिष्टता हो गई थी। कभी-कभी दोनों परस्पर बैठ कर बड़ी देर तक बातें किया करते।

आज रविवार की छुट्टी थी अतः धीरेश घूमता फिरता कुंवर साहब की तरफ़ को निकल गया। वे इस समय अपनी लाइब्रेरी के बराण्डे में ही एक आराम कुर्सी पर लेटे हुए कोई मासिक पत्रिका पढ़ रहे थे। इसे देखते ही बड़े तपाक से मिले और ससम्मान बिठा कर बड़ी ख़ातिर तवाज़ः की। प्रचलित शिष्टाचार की रसम पूरी होने के बाद उनमें भिन्न-भिन्न विषयों पर बातचीत होने लगी। देश की वर्तमान स्थिति पर भी दोनों का कुछ देर तक वादाविवाद होता रहा।

धीरेश कह रहा था—"लड़ाई-झगड़ों से तो नाक में दम आ गया है कुंवर साहब! न जाने कब यह युद्ध ख़त्म होगा? इसका

अन्त है भी या नहीं ! भगवान ही जाने। दुकानदारों का तो बोल बाला है--जिन चीज़ों की युद्ध में कोई ज़रूरत ही नहीं है उसे भी तो इन कम्बख़्तों ने मंहगा कर दिया है। दुगनी, तिगुनी और चौगुनी क़ीमत चढ़ा दी है इन लोगों ने। ग़रीब करे तो क्या करे ? पैसा इतना मंहगा हो गया है कि ढूंढ़े से भी दिखाई नहीं देता।"

कुंवर साहब मुस्कुराते हुए बोले—"आप तो बड़े परेशान दिखाई दे रहे हो धीरेश बाबू ! अभी तो घर में भाभी भी नहीं आई हैं—फिर यह परेशानी क्यों ? चीज़ें मंहगी हो रही हैं तो होने दो—तुम्हारे ज़रूरत की चीज़ें तो सब मिल ही जाती हैं ना ?"

"अजी क्या ख़ाक मिल जाती हैं।" धीरेश बाबू ने झुंझला कर उत्तर दिया और अपनी ढोड़ी पर हाथ फेरते हुये बोले—"आप देख रहे हैं मेरी दाढ़ी ! कितनी बढ़ी हुई है ? पूरे सात दिन हो गये हैं बाल बनाये को। घर मे सेफ़्टी रेज़र पड़ा हुआ है लेकिन बिना ब्लेड के बेकार है। ब्लेड इतने मंहगे हो गये हैं कि लेते हुये तबीअत हिचकिचाती है।"

कुंवर साहब अपनी हँसी को रोकते हुए बोले—"भाई बात यह है कि यह सब चीज़ें विशेषतया जर्मनी ही अच्छी बनाता है और वही आज कल लड़ाई-झगड़ों में उलझा हुआ है फिर तुम्हीं बताओ ये चीज़ें मंहगी न हों तो और क्या हो ? मिल जाती हैं यही ग़नीमत है।"

"ऐसे मिलने से तो न मिलना ही अच्छा है।" विरक्त भाव से धीरेश बोले--"ठीक तो यह है कि समय और परिस्थिति प्रायः सदा ही अमीरों के अनुकूल ही रहा करती है। धनी जो चाहे कर सकता है लेकिन मेरे जैसा निधन क्या करे ? इच्छा रहते हुए भी कुछ नहीं कर सकता !"

कुंवर साहब ने कहा--"क्यों झींकते हो यार। अब तो सुना है हर जगह सरकारी नौकरी में मंहगाई मिलने लगी है। क्या तुम्हारे दफ्तर में ऐसा कोई प्रबन्ध अभी नहीं हुआ ?"

"कुछ हुआ और कुछ हो रहा है।" धीरेश ने उदास मन से कहा, "भाई, क्या होता है इन छोटे मोटे प्रबन्धों से ? रुपया पर एक आना देने भी लगे, तो उससे विशेष कोई फ़ायदा नहीं पहुँचता।"

वे बोले—"क्यों नहीं फ़ायदा पहुँचता ? माना कि तीस रुपया महीना तुम्हारी तनख़्वाह है, उसपर तीस आना तुम्हें महंगाई मिली। महीने में एक रुपया चौदह आने का इज़ाफ़ा हुआ !"

"आप तो पूरे हिसाबी मालूम होते हैं कुंवर साहब ! काश आप हमारे महकमे में चैकिंग इन्सपैक्टर होते ! निश्चय ही तब तो चुङ्गी के कर्म्मचारियों में तूफ़ान सा उठ खड़ा होता।"

"क्यों ? क्या वास्तव में मैं इतना ही भयानक हूँ ?"

"नहीं,—आपको मुग़ालता हुआ।" धीरेश ने ग़लत फ़हमी दूर करते हुये कहा—"मेरा इशारा आपकी कार्य्य कुशलता एवम् बुद्धि की प्रखरता की ओर ही था।"

"अस्तु मुझे अब इन्सपैक्टर बनने के लिये दरख़्वास्त देनी पड़ेगी ?"

"इन्सपैक्टर बनने के लिये दरख़्वास्त देने की तो इतनी ज़रूरत नहीं है जितनी कि शादी करने के लिए कोशिश करने की ज़रूरत है ।।'

धीरेश की बात पर मानों वे विचलित से हो उठे। उसके मुख पर उनकी दृष्टि स्थिर रह गई। शान्त मन से उन्होंने पूछा, "शादी के विषय को बड़ा महत्व दे रहे हो धीरेश !"

"क्यों न दूँ ? घर में ले जो आये हो।" धीरेश ने तुरन्त ही उत्तर दिया।

कुंवर साहब चिहुंक से पड़े--मीना ! आँखों के आगे उसकी छवि थिरकने लगी। उसी को तो वे अपने घर ले आये थे--उसी के बारे में तो यह कह रहा है। लेकिन इसे कैसे मालूम हुआ ? अनेकों विचार क्षण भर में ही उनके मस्तिष्क में चक्कर काट गये--स्थिर वे कुछ भी न कर सके। उन्हें चुप देख धीरेश ने पुनः बात उठाई--

"क्यों कुंवर साहब ! एक बात तो बताइये,—इन श्रीमती जी के साथ सिविल मैरिज हुई है आपकी, या यूं ही सस्ता सा कोई सौदा हो गया है ?"

"धीरेश ! बहुत आगे बढ़े जा रहे हो तुम ! बुरे विचारों का अनुकरण न करके अगर तुम इन्हीं विचारों को किसी अच्छे सांचे में ढाल सकते तो कितने आनन्द की बात होती क्या तुम

कह सकते हो कि मीना को आश्रय देकर मैं ने कर्तव्य-पालन करने में भूल की,--एक निराश्रिता निस्सहाया नवयुवती को सहायता पहुँचाना क्या अन्याय है ?"

"अन्याय नहीं बल्कि पुण्य है।" धीरेश ने समझाते हुए कहा—"माना की सच्चे मन से आप किसी की सहायता कर रहे हैं--इससे क्या ? दुनिया तो यह मानने के लिये तय्यार नहीं होगी। आयु, रूप और स्त्री जाति होने के कारण सभी आपको सन्दिग्ध दृष्टि से देखेंगे।"

"बात ठीक कह रहे हो धीरेश ! लेकिन न्याय के पक्ष में दुनिया का डर मुझे नहीं है। सत्-पथ यद्यपि कष्टकर और कण्टकमय अवश्य है लेकिन विजय होती है अन्त में इसी पथ पर चलने वालों की। मीना किसी भयंकर भूल अथवा आकस्मिक घटना का शिकार हुई है—भेद छिपा रक्खा है तौ भी इस समय सहायता की उसे ख़ास ज़रूरत है।

"भाई हमारी तो समझ में आता नहीं यह धंधा। ऐसा भी परोपकार किस काम का जिसमें अपनी ख्याति में धब्बा लगे। मुख पर यदि कोई कुछ कहने का साहस न करे तो इससे क्या ? पीठ पीछे तो जो जिसके मन में आता है कह ही देता है। समझो न समझो तुम्हारी मरज़ी।"

कुंवर साहब क्षण भर तक चुप रहे मानों इसके बारे में कुछ सोच रहे हों। तब कुछ ठहर कर वे बोले,—"मीना स्वभाव की बुरी नहीं है। चरित्र भी उसका निर्मल और पवित्र मालूम होता

है—बोल-चाल और आचार-व्यवहार से कोई भी उसे किसी उच्च घराने की लड़की कहने में संकुचित नहीं होगा—वह जान भी पड़ती है वास्तव में एक कुलीन युवती ही। समय के चक्कर में आकर या किसी आकस्मिक घटना के वशीभूत हो कर यदि उसके सिर यह मुसीबत आ भी गई है तो इसमें उसकी सहायता करना क्या मानवता के नाते हमारा कर्तव्य नहीं है ? उसकी सहायता करके मैं कोई तो पाप नहीं कर रहा हूँ ?"

धीरेश ने विचित्र भाव से अपना मुख बिचकाते हुए कहा—"काम तो आप परम पुनीत और प्रशंसा के योग्य ही कर रहे हैं, लेकिन मन न जाने क्यों जमता नहीं इन बातों पर। वह एक रहस्यमयी लड़की है। इसके जीवन में गूढ़ रहस्य—कोई अद्भुद भेद छिपा हुआ है।"

सरलता पूर्वक वे बोले—"यह दुनिया ही रहस्यमयी है फिर उसके जीवन के बारे में कौन कहे ? यदि किसी कारण-वश वह अभी अपना भेद नहीं बताना चाहती तो न बताये—कभी न कभी तो बतायेगी ही। इसके लिये बेकार में उसे परेशान करने की मेरी इच्छा नहीं।"

"अच्छा यह तो बताओ, वह शादी शुदा है या अभी कुंवारी ही ? धीरेश ने उत्सुकता से पूछा।"

उन्हों ने जवाब दिया—"उसे देखने से तो मालूम होता है कि अविवाहिता ही है।"

"तब तो भाई……" कुछ सोचता-सा मुस्कराता हुआ वह

बोला--"ठीक ही है। क्यों न फिर यह जोड़ी मिला कर एक कर दी जाये ? आप भो तो आखिर उम्मीदवार में ही हैं ना !"

"ऐसा कह कर तुम कितनी बड़ी भूल कर रहे हो धीरेश ! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मीना ने मुझ से केवल सहायता ही मांगी है, न कि मेरे साथ अपनी शादी करने की याचना की है ?'

तो इससे क्या हुआ ? तुम भी अकेले और वह भी अकेली है ?"

"कैसे कह सकते हो कि वह भी अकेली है ? कौन जाने पीछे उसके कौन-कौन हैं ? मां-बाप, भाई-बन्धु, सगे-सम्बन्धियों में से कोई न कोई तो होगा ही ?"

"भाई जब मियां-बीबी की राज़ी तो क्या करेगा काज़ी। क्यों नहीं इस मौक़े से फ़ायदा उठाते ?"

"तुम बिलकुल शिष्टाचार के विरुद्ध बात कर रहे हो धीरेश ! एकाकी ऐसा कोई भला आदमी कर सकता है क्या ?" खीझते, झुंझलाते, कुछ रुष्ट से होते हुए कुंवर साहब बोले।

धीरेश उनके आचार-व्यवहार से भली भांति परिचित था। इतनी बड़ी धन-सम्पति का एकमात्र अधीश्वर तथा पूर्णरूप से स्वतन्त्र होते हुए भी उनके चरित्र पर दाग़ नहीं आ पाया था। ब्रह्मचर्य्य के नियमों का वे बराबर पालन किया करते थे। पास-पड़ोस और परिचित लोगों में बहुत सी सुन्दर युवतियां

उन्हें जानती थीं—यदि चाहते तो वे उनके लिए अप्राप्य नहीं थीं, लेकिन इस ओर उनका ध्यान भी कभी नहीं गया।

धीरेश के मन में उनके प्रति श्रद्धा थी—उनकी सौजन्यता, कर्तव्यपरायणता, तथा उदारता की वह हृदय से क़द्र किया करता था। उपरोक्त बातें उसने केवल उन्हें चिढ़ाने के अभिप्राय से ही कही थीं। उन्हें बिगड़ता हुआ देख वह एकदम से नर्म पड़ गया और बात का रुख़ बदलते हुए बोला,—"नाराज़ नहीं होना कुंवर साहब! मैं ने सिर्फ़ आपका मन जांचने के लिये ही ये सब बातें कह डाली थीं वरना सच क्या है? यह मैं जानता हूँ।"

कुंवर साहब मुस्कराने लगे। धीरेश उन्हें इस ख़ुशी की हालत में ही छोड़—उठ कर अपने घर चला गया। उसका चित्त-विकार रहित—शान्त था एकदम से उस समय।

चौथा परिच्छेद

दो सप्ताह बाद.................

इन चौदह दिनों के भीतर ही कुंवर साहब और मीना—दोनों एक दूसरे के काफ़ी समीप आ गये थे। स्वभाव प्रायः दोनों ही एक दूसरे का ठीक से जान गये थे। नित्य ही अवकाश मिलने पर कुंवर साहब उसके कमरे में जा पहुँचते और घन्टों बैठे हुए भिन्न-भिन्न विषय पर बातें किया करते। बातचीत के सिल-सिले में उन्हें मालूम हुआ कि मीना न केवल साहसी और चतुरा ही है बल्कि दुनिया की प्रत्येक बातों की भी वह काफ़ी जानकारी रखती है।

शरद् की मध्याह्न का समय था। स्वच्छ नीलाकाश पर सूर्य की किरणें चमकती हुई-सी तालाब के साफ़ पानी के ऊपर थिरक रही थीं। बाग़ का कोना-कोना विविध जाति के असंख्य फूलों से भरा पड़ा था। ऐसे समय में कुंवर सुरेन्द्र सिंह मीना के साथ तालाब के चबूतरे पर एक चटाई बिछा कर बैठे हुए धूप सेंक रहे हैं—पास ही वह बच्चा भी अपने छोटे से मुलायम गद्दे के ऊपर पड़ा हुआ मीठी नींद सो रहा है। कुंवर साहब इस समय विशेष अनन्द का अनुभव कर रहे हैं। मीना को न जान कर भी वे उसे जानने की कोशिश कर रहे थे।

कुछ यूं ही—निरुद्देश्य भाव से पूछ बैठे—"क्यों मीना!

बौद्ध-धर्म के बारे में तुम्हारा क्या विचार है? मीना के होठों पर हलकी मुस्कुराहट की एक रेखा-सी खिंच गई।

मुस्कुराते हुए उसने जवाब दिया—"बौद्ध धर्म्म ने हमें, आधी से ज्यादा दुनिया के लोगों से मिला कर एक कर दिया है। चीन और जापान तो सब इसी धर्म के मानने वालों से भरा पड़ा है। चीनी लोग इसीलिये पहले हमारे देश को 'थियेन चु' कहा करते थे।"

'थियेन चु'! यह 'थियेन चु' कौन चीज़ है भाई?" आश्चर्य से उन्होंने पूछा।

वह बोली—"आपका देश उनके देवताओं का देश था। इसीलिये वे लोग भारतवर्ष को 'थियेन चु' कहते थे। देवताओं के देश को ही 'थियेन चु' कहते हैं।"

"लेकिन यह बात तो क्राईस्ट की पाँचवीं शताब्दी की तुम बता रही हो?"

उनकी बात पर उसने जवाब दिया—"अगर आप सत्रहवीं शताब्दी के वृतान्त देखें तब भी अपने देश को आप कम समृद्धिशाली न पायेंगे। इसके बराबर था ही कौन सा देश? समय के प्रभाव से कोई नहीं बचता—हमारा देश भी न बच सका।"

वे बोले—"ओहो, तुम तो पूरी पण्डिता मालूम होती हो—क्या मैं इतना भी नहीं जानता?"

मीना भौंहें टेढ़ी करके बोली—"क्या जानते हैं? जानने न जानने में भेद क्या है? छोटे से जापान ने सौ वर्ष के भीतर

ही पश्चिमी देशों की बराबरी कर ली और आप लोग क्या कर सके ? अँगरेजों से आप एक ही गुण सीख सकते थे--उसको यदि सीख लेते तो इतने समय की पराधीनता भी एक प्रकार से उपयोगी सिद्ध हो जाती। किन्तु हमारे देश वाले तो इतना भी न कर सके।"

"उनके किस गुण की तुम इतनी प्रशंसा कर रही हो !" सशंकित दृष्टि से देखते हुए उन्होंने पूछा।

"यूं तो अनेक गुण उन लोगों में भरे पड़े हैं किन्तु एक विशेष गुण उन लोगों का है—तरह-तरह के धर्मों और प्रान्तों के भावों के ऊपर राष्ट्रीय भाव की सुदृढ़ स्थापना। राष्ट्रीयता के भाव का न होना विश्व-बन्धुत्व की निशानी नहीं है, बल्कि जीवन के एक आवश्यक और परमावश्क अंग की बेहोशी का परिचायक है। अब भी कोई न समझे तो उसके लिये क्या किया जावे ?"

विषय की गहराई तक मीना उतरती जा रही थी, यह बात कुंवर साहब से छिपी नहीं थी। मामला इससे भी अधिक न बढ़ने पाये इस ख्याल से उन्होंने बात का रुख बदलते हुए कहा--

"दूसरे देशों के साथ तुम अपने देश की तुलना कैसे कर सकती हो मीना ? सुदूर पूर्व में स्थित, वह छोटा सा देश जापान ! हम उसी की बराबरी कैसे कर सकते हैं ?"

"क्यों ? उस देश के आदमियों की अपेक्षा आप लोग कमती लम्बे चौड़े हैं क्या ?" साहस, बुद्धि, और पुरुषार्थ का एकदम से ही दीवाला निकाल बैठे हैं क्या आप लोग ?"

बात कुछ तीखी और दिल में चुभने वाली थी; किन्तु कटु होते हुए भी थी तो वास्तव में सत्य ही। कुंवर साहब के स्वाभिमान को एक हल्का धक्का सा लगा—क्षण भर के लिये वे अप्रतिभ से हो गये; किन्तु शीघ्र ही संभल कर उन्होंने उत्तर दिया—"विदेशी मुल्कों की जातीयता एवम् साम्प्रदायिकता हम लोगों से सर्वथा भिन्न है मीना! हम लोगों की स्थिति ही हमारे अनिष्ट का कारण है।"

"तब क्यों नहीं ऐसी स्थिति से छुटकारा पाने का प्रयत्न करते?"

"प्रयत्न!" मन्द हास्य के साथ वे बोले—प्रयत्न की भी एक ही कही तुमने। भाई, जहाँ हिन्दू और मुसलमान ये दो बड़ी क़ौमें हों—वहाँ प्रयत्न करना न करना सब बराबर है। आज कितने समय से हमारे लीडर, हमारे बड़े-बड़े नेता इसी प्रयत्न में तल्लीन हैं मगर निकला कुछ इसका नतीजा? सब जैसे का तैसा ही तो है—न एक पग आगे ही बढ़े और न पीछे ही हटे। देश की इन दोनों बड़ी जातियों में नित्य कोई न कोई झगड़ा होता ही रहता है। छोटी सी छोटी बात पर भी ये लोग आपस में लड़ बैठते हैं; कितने दु:ख की बात है?"

"इसके लिये प्राणायाम की जरूरत है।" सरल भाव से मीना बोली।

कुंवर साहब अनमने से बैठे रहे। कुछ क्षण तो वे यह ही न समझ सके कि मीना जो कुछ कह रही है—वास्तव में सत्य

है अथवा व्यंग्य-भाव ही। झुकी हुई पलकें उसकी ओर मुड़ीं—वह मुस्कुरा उठी। बोली—"प्राणायाम का मतलब मन की गति पर विजय प्राप्त करना ही है—मन की उच्छ्वसित भावनाओं पर क़ाबू पाने से मनुष्य क्या नहीं कर सकता? आप लोग भी कीजिये—चेष्टा करने पर क्या नहीं हो सकता?"

"किस-किसे प्राणायाम का मन्त्र देती फिरोगी?" कुंवर साहब ने दुखित भाव से कहा।

मीना इसका उचित उत्तर देने ही वाली थी कि इतने में रधिया ने कमरे में प्रवेश किया और कुंवर साहब के हाथ में एक कार्ड थमा कर चुपचाप कमरे से बाहर चली गई, मानों उसे उनका उत्तर ले जाने की तनिक भी इच्छा नहीं थी। कुंवर साहब ने कार्ड देखा और तब एक विचित्र भाव से अस्फुट ध्वनि में उनके मुख से निकला—"अच्छा! आज ये बेवक़्त का आना कैसा?"

मीना ने शंकित भाव से उनकी ओर देखते हुए पूछा, "कौन महाशय आये हैं?"

"डाक्टर पाल—यहाँ के मेडिकल आफ़िसर!" कहते हुए कुंवर साहब तुरन्त ही उठकर बाहर चले गये। लेकिन जाते वक़्त जब उनकी दृष्टि मीना की ओर घूमी तो उन्हें लगा मानों डाक्टर पाल का नाम सुनते ही मीना का मुख सूख गया है, किसी आन्तरिक भय से वह सहसा सिहर-सी उठी है। समय

नहीं था उससे बात करने का, नहीं तो वे अवश्य उससे इसका कारण पूछते—अस्तु वे उसी क्षण चुपचाप वहाँ से चले गये।

कुंवर साहब ने बैठक में आकर देखा डाक्टर पाल एक कुरसी पर जमे बैठे थे, पास ही मेज़ के सहारे उनकी पतली सी छड़ी रक्खी थी। इनके पहुँचते ही बड़े तपाक से हाथ मिलाते हुए बोले—"हैल्लो कुंवर साहब ! कहिये, तबीयत तो ठीक है ?"

"जी हाँ, कृपा है आपकी।" शिष्टता पूर्वक जवाब देते हुए कुंवर साहब ने पूछा—"आज ये बेवक्त कैसे कष्ट उठाया आपने ? कहिये, कुशल तो है ना ?"

वे बोले—"यूं तो सब कुशल ही है, लेकिन यार बड़ी कठिन समस्या आ पड़ी है सामने।"

"सो तो आपका चेहरा देखने से ही पता चलता है।" कुंवर साहब ने किंचित मुस्कुरा कर उनसे पूछा, "ऐसी कौन कठिनाई आ पड़ी है भाई ! क्या मैं जान सकता हूँ ?"

"तुमसे छिपाने का कोई कारण न होते हुए भी दिल कहते हुए घबराता है।" डाक्टर साहब ने कहते हुए एक उड़ती हुई सन्दिग्ध दृष्टि उनके ऊपर डाली। कुंवर सुरेन्द्रसिंह भी कोई निरे बच्चे नहीं थे—डाक्टर की उड़ती हुई नज़र उनकी चंचल आँखों में छिपी हुई न रह सकी। लेकिन उनके प्रति डाक्टर के ऐसे भाव क्यों है—यह समझ सकने में वे अपने आपको सर्वथा ही असमर्थ समझ रहे थे। अस्तु कुछ भी हो—उन्होंने बड़े धीर

भाव से उनकी तरफ़ देखते हुए सहानुभूति पूर्ण शब्दों में पूछा, "आख़िर इस परेशानी का अन्त तो होना ही चाहिये !"

"वही सोच रहा हूँ—अनमने भाव से डाक्टर बोला, "अच्छा, एक बात तो बताइये।"

"पूछिये," उसी सरलता से कुंवर साहब ने कहा।

"क्या आप आज से पन्द्रह दिन पहले रायपुर के जंगल में गये थे ?"

"वहाँ तो प्रायः मैं रोज़ ही घूमने जाया करता हूँ।" उन्होंने उत्तर दिया।

डाक्टर बोला, "नहीं मेरा मतलब है उस दिन क्या कोई ख़ास घटना तो नहीं घटी थी वहां।"

"ख़ास घटना !" बुद्धि पर ज़ोर देते हुए कुंवर साहब ने कहा। यद्यपि उनका हृदय इस समय ज़ोरों के साथ स्पन्दन कर रहा था तो भी बड़े यत्न से उन्होंने अपने उस भाव को छिपाये हुए ही पूछा, "ख़ास घटना तो कोई नहीं घटी थी—हाँ एक बाघ का शिकार अवश्य खेला था उस दिन—बस ! और कुछ भी नहीं।"

"छिपा रहे हैं बात को आप कुंवार साहब !" डाक्टर ने मन्द हास्य से उनकी ओर देखते हुए पूछा—"केवल बाघ का शिकार खेलने तो आप जाते नहीं हैं वहाँ—उस दिन तो अकस्मात ही आपको उस बाघ का सामना करना पड़ गया था ना ?"

'हाँ,, ऐसा ही समझ लीजिये"—कुंवर साहब ने खिन्न

चित्त से दूसरी ओर देखते हुए पूछा---"लेकिन आ का सम्बन्ध उस घटना से क्या है ? बता सकेंगे।"

"उसी दिन से मैं इतना परेशान हूँ मिस्टर !" कुछ रुष्ट भाव से डाक्टर बोला, "जिस लड़की को आपने उस बाघ के पंजे से छुड़ाया है उसी को मैं चाहता हूँ, उसी के लिये आज इतने दिनों से मैं मारा-मारा फिर रहा हूँ। क्या आप दया करके उसे.........."

"लेकिन वह तो अब यहाँ नहीं है।" तुरन्त ही कुंवर साहब ने कहा।

"झूठ है बिल्कुल।" डाक्टर उत्तेजित हो उठा--कुछ कड़े शब्दों में बोला, "उसे अपने घर में छिपा कर भी क्या आप मेरी आँखों को धोका दे सकेंगे।"

कहता हुआ वह उसी तरफ़ को झपट पड़ा जिस तरफ़ से कुंवर साहब अभी-अभी आये थे। उसके पीछे कुंवर साहब भी चल दिये।

पांचवां परिच्छेद

डाक्टर झपटता हुआ मीना के कमरे में जा पहुँचा। उस समय उसकी गति इतनी तेज़ थी कि कुंवर साहब जैसे फुर्तीले नवयुवक को भी उसकी चाल में बाधा पहुँचाने का साहस न हुआ। एक के बाद दूसरा—दोनों ही इस समय कमरे के भीतर प्रवेश कर चुके थे। दोनों ही इस समय किसी अद्भुत काण्ड के होने की कल्पना कर रहे थे। लेकिन यह क्या? कमरे के भीतर जिस वस्तु के होने की उन्हें पूर्ण आशा थी—वही इस समय ग़ायब थी। हाँ ग़ायब ही तो थी एकदम से। मीना! कहां थी वो? कोई चिन्ह भी तो शेष नहीं था वहाँ। दोनों ने स्तब्ध भाव से एक दूसरे की ओर देखा, और तब दोनों की दृष्टि ख़ाली पड़े हुए पलग की ओर घूमी— दो छोटे-छोटे काग़ज़ के टुकड़े पड़े हुए हवा में हिल रहे थे।

दोनों झपटे और दूसरी क्षण ही एक-एक काग़ज़ का टुकड़ा दोनों के हाथ में था। डाक्टर ने पढ़ा। लिखा हुआ था :—

"व्यर्थ परेशान होने की ज़रूरत नहीं है डाक्टर साहब! विश्वास कीजिये मैं निर्दोष हूँ—बच्चा, बच्चे वाले का है मेरा उसमें कुछ भी नहीं—निमित्त मात्र ही हूँ मैं तो। आप सन्देह करते हैं मेरे ऊपर। यही है स्त्रियों के प्रति आपकी उदारता! अच्छा, कीजिये ख़ूब मनमानी—लेकिन याद रखिये! यूँ आप

मुझे पा नहीं सकेंगे। मैं जारही हूँ—कुंवर साहब को आप तंग न कीजियेगा। वे निर्दोष हैं—मीना !"

दूसरी चिट्ठी कुंवर साहब की थी। उसमें लिखा था :--

"स्वप्न देखा था आपने ! कोई आई, रही, और फिर चली गई। मेरे लिये चिन्ता नहीं कीजियेगा—आपको तो मालूम ही है मेरे जीवन में एक रहस्य छिपा है जिसे मैं आज तक भी आपके सामने प्रगट न कर सकी। आशा है क्षमा करेंगे। डाक्टर से बात करने पर आपको बहुत कुछ मेरा भेद मालूम हो जायेगा और तब आप भी मुझे पतिता समझ कर मुझसे घृणा करने लगेंगे। अच्छा, कीजिये घृणा--सब करते हैं आप भी करें। मन में बात जमे तो समझ लीजियेगा मैं निर्दोष हूँ अन्यथा आपकी मरज़ी। मैं जारही हूँ—नहीं कह सकती कहां ! शायद... फिर ! मीना।"

दोनों ने अपनी-अपनी चिट्ठी को पढ़ा और दोनों ही क्षण भर तक स्तब्ध खड़े रह गये। दोनों की विचित्र दशा थी यद्यपि भाव दोनों के ही अलग-अलग थे। बड़ी देर बाद डाक्टर के मुख से निकला--"आख़िर निकल ही गई हाथ से।"

"आइये, अब उसके लिये अधिक चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं।" कहते हुए कुंवर साहब उनका हाथ पकड़ उन्हें बैठक की ओर ले चले। अपने हृदय की उद्विग्नता को वे इस समय ऐसा दबाये हुए थे मानों उस घटना का किंचित भी उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। बैठक में पहुँच कर पुनः दोनों

अपनी-अपनी कुरसी पर बैठ गये। कुछ क्षण तक दोनों मौन भाव से बैठे रहे। अन्त में डाक्टर को चुप देख कुंवर साहब ही पहले बोले।

"कुछ समझ में नहीं आता यह रहस्य ! आख़िर क्यों आप उसके पीछे पड़े हुए हैं डाक्टर ?"

"व्यर्थ नहीं पड़ा हुआ हूँ मिस्टर ! बड़ा गहरा रहस्य है—सुनोगे तो सिर पकड़ कर बैठे रह जाओगे। वह एक रहस्यमयी युवती है—भयानक ! वास्तव में बड़ी भयानक !!"

"यूँ किसी के लिये बेकार बुरे विचारों को स्थान देकर मैं अपना मस्तिष्क ख़राब नहीं किया करता—ऐसी मेरी आदत भी नहीं है। हाँ, यदि आप ख़ुलासा उसका थोड़ा बहुत हाल बताने की कृपा करें तो बहुत संभव है मेरे विचार भी आप ही की तरह हो जावें"

"घबराइये नहीं, सब मालूम हो जायेगा।" डाक्टर ने उन्हें आश्वासन दिया और तब बड़ी फुर्ती से कुरसी पर से उठते हुए बोला—"आपकी मोटर साइकिल तैयार है न ?"

उन्होंने जवाब दिया, "हाँ तैयार है। क्यों पीछा करने का विचार है क्या ?"

डाक्टर बोला, "हाँ, मैं अभी उसके पीछे जाना चाहता हूँ।"

"लेकिन अगर वह न मिली तब" ?

"तब मैं चारों तरफ़ पुलिस थानों में फ़ोन कर दूँगा। अभी

वह अधिक दूर नहीं पहुंच सकी होगी—पुलिस वाले उसे तुरन्त गिरफ़्तार कर लेंगे।"

"ऐसा करना क्या उचित होगा?"

"ओह! उचित अनुचित के झमेले में अभी आप मुझे न डालें। यदि दे सकते हैं तो तुरन्त मुझे अपनी मोटर साइकिल मंगा दें—देर करने से कोई फ़ायदा नहीं।"

कुंवर साहब भी चाहते थे कि जैसे हो मीना एक बार पुनः वापस आ जाये। यहाँ आने पर उन्हें पूरा विश्वास था कि वह चाहे जैसी भी पतिता हो—अत्यन्त भयानक अपराध की ही अभियुक्ता क्यों न हो—कोशिश करके वे अवश्य ही उसे छुड़ा लेंगे। इसी ख्याल से उन्होंने उसी क्षण बराण्डे में खड़ी हुई मोटर साइकिल को लाकर उनके हाथ में थमा दिया। डाक्टर पाल तुरन्त ही उसे स्टार्ट करके धूल उड़ाते हुए एक ओर चल दिये।

कुंवर साहब वहीं खड़े हुए मोटर साइकिल के चक्कों से उड़ती हुई धूल को देखते रहे। उसकी चाल क्रमशः तेज़ होते-होते अन्त में पूरे वेग पर पहुंच चुकी थी। पीछे उड़ती हुई धूल और धुआं भी वायु में मिल कर अब लुप्त प्राय हो चला था—लेकिन कुंवर साहब अब भी ज्यूं के त्यूं खड़े हुए विस्मृत से उसी ओर देख रहे थे। धीरे-धीरे मोटर साइकिल के एंजिन की आवाज़ भी कान में आनी बन्द हो गई और वह भी नज़र से ओझल हो गई; अब कुंवर साहब का भी स्वप्न टूटा और वे सिर झुकाये

हुए हताश मन से बैठक में आकर बैठ गये। किन्तु ऐसे समय में एकान्तवास मनुष्य के लिये प्रायः हितकर नहीं हुआ करता। अनेक दुश्चिन्ताए आकर मडराने लगती हैं मस्तिष्क के चारों ओर।

कुंवर साहब के साथ भी ऐसा ही हुआ। अकेले में फिर वही मीना का ख्याल रह-रह कर उन्हें सताने लगा। जितना सोचते उतना ही वे उस रहस्यमयी युवती को समझ सकने में अपने को असमर्थ पाते। तनिक भी तो उन्हें उसका भेद मालूम नहीं हो पाया था। चौदह दिन के अल्प-सम्पर्क ने ही उन्हें काफ़ी से भी अधिक उसके समीप खींच लिया था। उसकी वाग्-पटुता और चंचलता के वे क़ायल थे। सहन-शीलता और लज्जा-भाव उसकी कुलीनता के द्योतक थे। गुण और सौन्दय में वह किसी भी उच्च शिक्षित परिवार की विदुषी से कम नहीं थी, फिर डाक्टर क्यों उसके पीछे पड़ा हुआ है?"

यही एक प्रश्न था जो रह-रह कर कुंवर साहब को चंचल बना देता था। उससे हट कर उनका ख्याल उस नवजात शिशु की ओर गया। यह तो निश्चित था कि वह बच्चा मीना का न हो कर किसी और का ही था। लेकिन अगर यह सत्य है तो फिर उस बच्चे के माता-पिता कौन हैं? कहाँ रहते हैं वे लोग? वह बच्चा मीना के पास कैसे आया? उसी के लिये तो वह इधर उधर मारी-मारी फिर रही है—उसके लिये इतना मोह

क्यों ? हो सकता है बच्चा उसी के गुप्त-प्रेम का परिणाम हो ! किन्तु नहीं—ऐसा सोचने की भी इच्छा नहीं होती।

भगवान मीना की रक्षा करें। यदि वह चरित्र-भ्रष्टा और पतिता ही हो तो भी हे दयालु परमात्मा, उसकी रक्षा करो ! तुम्हारे ही हाथ है उस अबला की लाज। तुम्हीं बचा सकोगे उसे इस भयंकर आपत्ति से। हे नाथ ! हे दयामय !! दया करो, उस अबला का कोई अनिष्ट न हो—यदि उस पर नहीं, तो कम से कम उस नवजात बच्चे पर ही दया करना। उसके बिना वह भी जीवित न रह सकेगा। ओफ़ ! न जाने कहां मारी-मारी फिर रही होगी इस समय वो ? दया, दया, हे दयामय ! उस अबला पर दया करो। दुष्टों के हाथ में पड़ने पहले ही उसे बचा लेना भगवान !

इसी प्रकार अधीर भाव से बड़ी देर तक बैठे हुए कुंवर साहब मीना के लिये शुभकामना करते रहे। तन-मन की सुध उन्हें उस समय कुछ भी नहीं थी। उन्हें यह भी नहीं मालूम हो सका कि मेज़ पर रक्खी हुई चाय कब से प्याले में पड़ी-पड़ी ठण्डी हो रही है। और भी न जाने कितनी देर वे इसी प्रकार बैठे रहते यदि उसी समय वहां रधिया आकर उन्हें उस स्वप्न से न जगा देती,—खटके की आवाज़ से वे चौंके और सामने खड़ी हुई अपनी बूढ़ी दासी को देख कर वे बोले—"क्या है रधिया ?"

खीस निपोरते हुए वह बोली —' आज उड़द की दाल और बेसन ख़त्म हो गया है बाबू ! यही कहने के लिए आई हूँ।"

"दुर पगली ! इस ज़रा सी बात के पीछे तुझे मेरे पास तक आना पड़ा। मंगा क्यों नहीं लिया नरदेव से कह कर। वह तो घर ही पर रहता है न हर वक़्त ?"

"रहता तो है, पर तुमसे तो पूछना ज़रूरी था ना ?"

"अच्छा जा, अब तो पूछ लिया—जाकर मंगा लेना। और सुन, आज रात का खाना मेरे लिये रखने की ज़रूरत नहीं—रात में मैं बिल्कुल कुछ नहीं खाऊँगा।"

"क्यों बाबू ! क्या बात ? क्या तबीयत ठीक नहीं है ?"

"हाँ कुछ ऐसा ही है।"

केवल इतना ही उत्तर सुन रधिया वहाँ से टलने वाली नहीं थी। कुंवर साहब के यहाँ वह आज से नहीं एक मुद्दत से नौकर थी। जीवन के पच्चीस वर्ष वह इसी घर में व्यतीत कर चुकी थी। इन्हें भी उसने अपनी गोद में खिलाया था इसी से वह इन पर विशेष स्नेह रखती थी। कुंवर साहब के मना करने पर उसने उनसे इसका कारण पूछना चाहा, किन्तु बार बार पूछने पर भी जब उन्होंने उसे कोई जवाब नहीं दिया तो हताश भाव से मन मार कर वह उन्हीं के पास ज़मीन पर बैठ गई। उसे बैठा देख कुंवर साहब झुंझला कर उठ खड़े हुए और बिना कुछ कहे सुने ही कमरे से बाहर आ एक तरफ़ को टहलते हुए चल दिये।

छठां परिच्छेद

डाक्टर पाल कुंवर साहब की मोटर साइकिल पर चढ़े हुए पूरी चाल से दक्षिण की ओर उड़े चले जा रहे हैं। ऊँची-नीची अथवा कच्ची पक्की सड़क का इस समय उन्हें तनिक भी ध्यान नहीं है। एंजिन को शक्ति पहुंचाने वाला थ्राटेल लीवर यद्यपि पूरा नहीं, तो भी पौन के लगभग अवश्य खोला हुआ है जिससे मोटर साइकिल ऐसी खराब सड़क के होते हुए भी चालीस पचास मील प्रति घन्टा के हिसाब से दौड़ी चली जा रही है।

रास्ते के किनारे-किनारे दाहिनी ओर ऊँची पहाड़ियों की श्रेणी है तथा दूसरी ओर बाईं तरफ़ ढलवान गहरी खाई है। खाई की तराई में दूर-दूर तक फैला हुआ घना जंगल है ज़िसमें अनेक प्रकार के भयानक और हिंसक जीव पाये जाते हैं। मार्ग पहाड़ी काट कर बनाया हुआ होने के कारण विशेष खतरनाक एवम् घूम घुमावदार है। तिस पर मोटर साइकिल की तेज़ रफ़्तार तो और भी ग़ज़ब ढा रही है। यह डाक्टर पाल जैसे होशियार आदमी का ही काम था जो उस पर अभी तक क़ाबू पाये हुए हैं।

कुंवर साहब की कोठी से चले हुए डाक्टर पाल को आधा घन्टा बीत चुका था। मोटर साइकिल की गति के हिसाब से

वे इस समय तक बीस मील लम्बा सफ़र तय कर चुके थे—तो क्या मीना इतनी जल्दी इतनी दूर चली आ सकती थी? डाक्टर साहब उसी को तो देखने निकले थे या कुछ और भी उद्देश्य था उनका? बिना किसी द्रुत-गामी सवारी के कोई इतनी दूर निकल आ सकता है—ऐसी तो धारणा करना भी सरासर पागलपन की निशानी है। फिर डाक्टर के मन में क्या है? केवल मीना को ढूंढ़ना ही उनका उद्देश्य नहीं है, अवश्य ही किसी और मतलब से वे इतनी दूर निकल आने पर भी अभी पीछे मुड़ने का नाम नहीं ले रहे हैं।

डाक्टर साहब की साइकिल इस समय एक ढाल पर तेजी से लुढ़की चली जा रही थी, साथ ही आगे एक मोड़ भी घूमना था उन्हें! लेकिन मोड़ घूमने से पहले ही सहसा मोटर साइकिल के हैण्डिल पर एक भारी पत्थर ऊपर से लुढ़कता हुआ आकर पड़ा और एकबारगी ही उछल कर साइकिल खड्ड की ओर को घूम गई। डाक्टर पाल ने देखा—पहाड़ी के ऊपर एक काले मुख का बन्दर था—बन्दर नहीं लंगूर! उसी ने ऊपर से एक बड़ा गोलाकार पत्थर लुढ़का दिया था, जिसके कारण साइकिल का हैण्डिल और अगला मडगार्ड एकदम से बेकार हो गया था, साथ ही डाक्टर पाल भी उसकी झपेट से न बच सके। उनके हाथ और माथा बुरी तरह से ज़ख्मी हो चुके थे। साइकिल खड्ड में गिरती हुई देख कर भी वे उसे संभाल नहीं सके—तुरन्त ऊपर से कूद कर उन्होंने

अपनी जान बचाई किन्तु माथे में लगी हुई चोट से रक्त-श्राव अधिक होने के कारण वे अधिक देर तक अपने पर क़ाबू न पा सके और दूसरे क्षण ही सिर को पकड़े-पकड़े वहीं बेहोश हो गिर पड़े।

जब उनकी आंख खुली तो उन्होंने देखा कि वे एक नरम गद्दे पर सो रहे हैं। हाथ और सिर में पट्टी बंधी हुई है। सारे शरीर में वेदना हो रही थी। चेतना-शक्ति पूरी तरह न लौटने पर भी उन्हें अपने साथ घटित दुघटना की समस्त बातें पुनः याद हो आईं। मस्तिष्क घूम रहा था, उसी घूमते हुए चक्कर में उन्हें एक-एक बात स्पष्ट दिखाई देने लगी। मीना, मोटर साइकिल और लंगूर! ओफ़, अकस्मात ही किस दुघटना के शिकार हो बैठे? कुंवर साहब की मोटर साइकिल का क्या हुआ होगा? कौन जाने।

उन्हें जान पड़ा किसी की छोटी-छोटी उंगलिएँ उनके सिर के बालों में घूम रही हैं। हाथ से टटोला और तब धीमे स्वर में डाक्टर पाल ने पुकारा—"मुन्नी!"

बालों में घूमती हुई अंगुलियां ठहर गईं और मुन्नी ने उसी स्वर में उत्तर दिया—"जी"

"तुम कब से बैठी हो यहां बेटी?" डाक्टर पाल ने पूछा।

"जब से आप आये हैं।" मुन्नी ने उत्तर दिया। डाक्टर को क्या मालूम कब से वे पड़े हुए हैं कहां—क्षण भर चुप रहने के बाद उन्होंने पूछा—

"मिस्टर निगम कहां हैं ?"

मुन्नी की चलती हुई अंगुलियां एक बार पुनः ठहरीं और डाक्टर पाल के कान के पास मुख ले जाकर उत्तर दिया—"बाबू जी अभी तक तो यहीं आपके पास बैठे हुए थे—थोड़ी देर हुई जाने कहां उठ कर चले गये।"

पुनः एक बार क्षणिक स्तब्धता छा गई वहां। किन्तु क्षण भर उपरान्त ही उस कमरे का दर्वाजा खुला और एक सुन्दर सुडौल नवयुवक ने कमरे में प्रवेश किया। उसकी आयु रही होगी तीस बरस के लगभग, पर देखने में हृष्ट-पुष्ट तथा मनचला जवान प्रतीत होता था। धीरे-धीरे निकट पहुँच कर उसने मिस्टर पाल के माथे पर हाथ रक्खा। डाक्कर ने आंख खोल कर देखा और नवागन्तुक को पहचान कर बोला—

"ओ मिस्टर निगम! आ गये हैं आप—भाई, खूब पहुँचे ठीक समय पर नहीं ढेर हो गया था मेरा तो आज। भगवान जाने जीवित भी रहता या नहीं।

"मगर यह हुआ कैसे मिस्टर पाल ?" निगम ने आश्चर्य से पूछा।

"दैवयोग से कहिये अथवा मेरे दुर्भाग्य से·······" डाक्टर पाल ने कुण्ठित शब्दों में उत्तर दिया। आगे कुछ और भी कहने वाले थे किन्तु क्षोभ तथा आत्म-ग्लानि से अधिक न बोल सके और चुपचाप उनकी दृष्टि निगम के चेहरे पर स्थिर रह गई।

मन का भाव समझ कर निगम आश्वासन देते हुए बोले—"चोट तो तुम्हें अधिक नहीं लगी केवल माथा और कान के पास ही पत्थर लगने से घाव हो गया है—हां उस मोटर साइकिल की बड़ी शोचनीय अवस्था हो गई है। शायद अब मरम्मत भी नहीं हो सकेगी उसकी—सभी तो चूर-चूर हो गई है।"

पाल उठने की चेष्टा करते हुए बोले "तुम्हें मोटर साइकिल की पड़ी है मेरा सिर उस बड़े पत्थर से चूर-चूर नहीं हो गया यही बहुत हुआ भाई!"

"लेकिन उस भयानक पहाड़ी रास्ते पर भी तुम मोटर बाईक लेकर इतनी तेज़ी से दौड़ रहे थे? आखिर क्यों? क्या ऐसी जल्दी पड़ी थी तुम्हें?"

"तुम नहीं समझ सकते। समझ कर भी तुम ना समझ बनने की कोशिश कर रहे हो।" डाक्टर पाल उत्तेजित हो उठा। उसके होंठ इस समय फड़फड़ा रहे थे—भार से दबा हुआ सांप जिस प्रकार पड़े-पड़े फुफकार मारता है उसी भांति की दशा इनकी भी हो रही थी। क्रोध और अपने सन्तप्त हृदय के आवेग को बड़े यत्न से दबा कर उन्होंने एक ओर को खिसकते हुए कहा—"भाग गई—आख़िर मेरे हाथ से निकल ही भागी वो!"

मिस्टर निगम ने देखा डाक्टर पाल की दशा अधिक शोचनीय होती जा रही है। कौन भाग गई? किसके लिये वे इतना उद्विग्न हो रहे हैं? यह सब उनकी बुद्धि में कुछ भी नहीं आया। पाल के साथ उनका परिचय है बहुत दिनों से। कालेज में दोनों

एक साथ हीं शिक्षा पाते रहे हैं। बी० ए० की परीक्षा के बाद पाल चले गये मेडिकल कालेज में डाक्टरी पढ़ने, और निगम जुट गये क़ानून की किताबों में।

इधर डाक्टर पाल ने एम बी०, बी० एस की डिग्री प्राप्त करके एक सरकारी हस्पताल में नौकरी कर ली और उधर मिस्टर निगम ने आई० सी० एस० पास करके डिप्टी कलेक्टरी की पदवी लेली। दोनों एक दूसरे के अभिन्न मित्र न होते हुए भी सहानुभूति अवश्य रखते थे एक दूसरे के साथ। निगम एक सज्जन, चरित्रवान और गृहस्थ आदमी थे जब कि पाल में इन सब का अभाव था।

पाल के मुख से अनायास ही कुछ ऐसे शब्दों को सुन कर निगम का मन यूं ही कुछ सशांकित हो उठा। यद्यपि डाक्टर की शारीरिक अवस्था विशेष सन्तोषप्रद नहीं थी तो भी उनसे इसका कारण पूछे बिना नहीं रहा गया। बड़ी नम्रता से कंधे पर हाथ फेरते हुए उन्होंने पूछा—"किस उलझन में हो डाक्टर! कौन भाग गई?"

डाक्टर चौंक पड़ा अपनी ग़लती पर। उसे मीना के बारे में कुछ नहीं कहना चाहिये था इनके सामने। पर अब क्या हो सकता था,—तीर निकल चुका था चुटकी से; फिर कुछ भी जवाब तो देना ही था उन्हें। कुछ सोच कर बोले—"साहब, क्या बताऊँ? इन दिनों कुछ ऐसी परेशानी में दिन बीत रहे हैं कि बस मैं ही जानता हूँ।"

मिस्टर निगम ने सरलता से पूछा—"फिर भी सुनें तो सही आखिर क्या परेशानी है ?"

पाल का चेहरा अब तक काफ़ी पीला पड़ चुका था। तुरन्त संभल कर बोला—

"बात यह है कि हमारे यहां एक लेडी डाक्टर थी। वह कुछ दिन हुए बिना किसी सूचना के वहां से भाग गई है। उसी को ढूँढ़ते-ढूढ़ते और भी परेशान हो उठा हूँ।"

"उसके लिये तुम्हें परेशान होने की क्या ज़रूरत ? क्यों नहीं अपने से उच्च पदाधिकारियों को इसकी सूचना दे देते ? वे लोग स्वयं उचित कार्यवाही करेंगे।"

'यही तो कठिन समस्या है। मैं नहीं चाहता कि पुलिस द्वारा उसे अपमानित किया जाये क्योंकि वह एक उच्च वंश की बड़ी भली लड़की है। मैं यह भी नहीं चाहता कि वह हमारे यहां से यूँ ही भाग कर चली जाये क्योंकि ऐसा होने पर हमारा महकमा बदनाम हो जायेगा।"

"तब फिर अब क्या विचार है।" मिस्टर निगम ने पूछा।

"मैं स्वयं ही उसे ढूँढ़ निकालने की कोशिश करूँगा। आपसे केवल यही प्रार्थना है कि आप यह भेद अभी गुप्त ही रक्खें। अब मैं चलता हूँ। क्या आपकी कार मुझे रायपुर तक पहुंचा सकेगी ?" और दूसरी क्षण डाक्टर पाल कार में बैठे रायपुर वापस जा रहे थे।

सातवां परिच्छेद

सांध्य समीरण मन्द गति से बह रहा है। सूर्य अपनी प्रखर किरणों को समेट कर पश्चिमी पर्वतों की ऊँची चोटियों में लुप्त-प्राय हो गये हैं। आकाश रक्तरंजित हो सूर्यास्त होने की सूचना दे रहा है। यद्यपि इस ओर के पहाड़ों की आड़ में सायं-काल का अंधेरा अधिक घना हो उठा है तदपि उसके सामने के बाक़ी पहाड़ों पर, घाटी के उस पार अभी भी धूप की चमक कहीं-कहीं है। इसी धूप के उजाले में दूर से एक छाया-सी चलती दिखाई देती है। ऊँचे-नीचे, ऊबड़-खाबड़, घूम-घुमावदार रास्ते पर वह छाया घबराई हुई-सी झपटी चली जा रही है।

सहसा चलते-चलते एक चीत्कार के साथ वह मूर्ति ज़मीन पर लोटती हुई दिखाई देती है। यह क्या ? ओफ़ ! मीना !! अपने नवजात शिशु के साथ मोड़ पर पहुँचने से पहले ही मोटर से टकरा जाती है। ब्रेक लगने की प्रति-ध्वनि चीं-ईं-ईं ज़ोर के साथ चारों ओर गूँज उठी और दूसरी क्षण मोटरकार बाईं ओर जाकर खड़ी हो गई। कार की पिछली सीट पर बैठी हुई सवारी ने एक बार अपने सिर पर हाथ फेर कर देखा पट्टी बंधी हुई थी फिर तुरन्त ही संभल कर ड्राइवर से पूछा—"शोफ़र ! क्या बात है ?"

"गाड़ी के नीचे एक औरत आगई है सरकार !" कहता

हुआ ड्राइवर नीचे उतर गया और दूसरी क्षण ही वह उस जगह जा पहुंचा जहां मोड़ पर मोटर उस स्त्री से टकराई थी। परन्तु यह क्या ? इस समय वहां न मीना थी और न वह बच्चा ही। ड्राइवर चकरा गया। इतनी जल्दी कहाँ हवा हो गई वो ? मोटर के नीचे आकर भी क्या वह जीवित रह सकती है ? यदि जीवित भी रहे तो क्या इतनी जल्दी भाग कर कहीं जा भी सकती है ? कुछ देर इधर उधर ढूँढ़ा, पर कुछ पता नहीं चला। अन्त में हताश होकर वापस चला आया।

डाक्टर पाल ने बड़ी बेसबरी से पूछा—"कुछ मालूम हुआ कौन था ?"

ड्राइवर ने जवाब दिया—"एक औरत सी मालूम होती थी, गोद में एक बच्चा भी था।"

डाक्टर पाल बैठे-बैठे उछल पड़े—"क्या कहा ? एक औरत ! बच्चे वाली औरत कहाँ है वह ? ढूंढो, ढूंढ़ो अरे ढूंढ़ो उठो ! यहीं कहीं होगी, जायगी कहाँ ?"

कहते-कहते डाक्टर साहब कार से नीचे कूद पड़े। अभी तक वे अपनी चोट में ही भूले बैठे थे मगर अब बच्चे वाली औरत का नाम सुनते ही न जाने कहाँ से उनमें इतनी फुर्ती आगई कि झट उतर कर स्वयं ही उस ओर को झपट चले। वह औरत मीना के सिवा और कोई भी नहीं हो सकती—यही ख्याल इस समय उनके दिमाग़ में था।

अँधेरा घनीभूत हो कर चतुर्दिग अपनी भयावनी काली चादर फैला चुका था। जंगल साँय-साँय करता हुआ-सा जान पड़ता था। पास पड़ी वस्तु भी दीखनी दुर्लभ हो गई थी। तिस पर भी डाक्टर पाल झपटे हुए उस मोड़ के पास जा पहुंचे। परन्तु वहाँ क्या था ? बड़े ग़ौर से इधर उधर देखा, खड़े होकर आहट ली, फिर घूमें—घटना-स्थल पर झुक पड़े। अंधेरे में अस्पष्ट दिखाई दिया मानों काई चीज़ खिसकती-खिसकती रास्ते के किनारे पहुँच कर जङ्गल की बड़ी-बड़ी झाड़ियों में अलोप हो गई है। डाक्टर साहब को मानों कुछ सुराग़ मिल गया हो। हर्षातिरेक से झूम कर हठात् ही चिल्ला पड़े।

"अरे शोफ़र ! इधर तो आओ। टार्च लेते आना साथ में।"

"टार्च तो नहीं है सरकार !" कहता हुआ ड्राइवर उनके पास आ गया।

"टार्च तो नहीं है—हुं...ह ! सरकार की दुम।" झुंझलाते हुए डाक्टर साहब उन झाड़ियों की तरफ़ बढ़े जिधर मीना के जाने का उन्हें सन्देह था। ड्राइवर हैरान था डाक्टर साहब के इस उतावलेपन पर। वह सोच रहा था, आखिर ये इतनी दिलचस्पी क्यों ले रहे हैं उसे ढूंढने में। ऐसी घटनाएँ तो प्रायः होती ही रहती हैं—फिर ऐसे भयानक निर्जन बन में देखा ही किसने होगा जो वे इतना परेशान हो उठे हैं। सहसा कुछ दूर झाड़ियों के भीतर से एक बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई दी

और दूसरी क्षण उसने देखा डाक्टर पाल उसी तरफ़ को भागे जा रहे हैं--विना किसी उलझन या रुकावट के।

आह! यह क्या? वही मीना जो इन महाशय के डर से अभी कुछ ही घन्टे पहले कुंवर सुरेन्द्र सिंह जैसे सुहृद एवम् सज्जन पुरुष का साथ छोड़ कर भागी थी अब पुनः उन्हीं के चंगुल में फंसने वाली है। बेचारी का सारा परिश्रम ही व्यर्थ हुआ। इससे तो कहीं अधिक अच्छा होता यदि वह उनके ही पास रहती। क्या कुंवर साहब इतने हृदयहीन अथवा कायर थे कि उसकी रक्षा न करके यूं उसे बध किये जाने वाले पशु की भांति डाक्टर साहब के हाथों सौंप देते। आह! मीना!! वास्तव में तेरे जीवन की यह सब से बड़ी और भयंकर भूल थी।

ड्राइवर अभी तक सड़क पर ही खड़ा हुआ सब कुछ देख रहा था। डाक्टर साहब मीना की खोज में बढ़ते हुए चले जा रहे थे,--हठात् उसे जाम पड़ा एक बड़ी सी झाड़ी में उलझ कर डाक्टर पाल धड़ाम् से नीचे गिर पड़े हैं और दूसरी क्षण ही अंधेरे के धुंधले वातावरण में उसे मालूम पड़ा मानों झाड़ी के चारों ओर धुएं का एक ग़ुबार-सा फैल गया है। प्रकृति का यह अद्भुत खिलवाड़ तनिक भी उसकी समझ में नहीं आया। जब बड़ी देर तक भी उसने डाक्टर साहब को उठते हुए नहीं देखा तो उसे और भी आश्चर्य हुआ। झाड़ी के चारों ओर धुआं सा कैसा? सत्यता का पता लगाने वह तुरन्त वहां से चल पड़ा।

पर हाय ! यह क्या ? बज़-ज़-ज़···भीं-ईं-ईं का शब्द कैसा ? ओह ! कैसा अनर्थ है। अब उसे मालूम हुआ, वह धूआं-सा कुछ और नहीं बल्कि मधु-मक्खियों का झुंड वहां उड़ रहा है। बेचारे डाक्टर पाल को क्या मालूम था कि जिस ओर वे तेज़ी से बढ़े जा रहे हैं उस ओर सामने ही उनके झाड़ी में एक बड़ा छत्ता शहद की मक्खियों का लगा हुआ है। उनकी तेज़ झपट ने आन की आन में उसे तोड़ कर नीचे गिरा दिया और अन्त में स्वयं भी उनसे घिरे हुए नीचे पड़े हैं। शरीर का कोई भी भाग शेष नहीं था जिसमें मक्खी न चिपटी हुई हों।

ड्राइवर पास जाते-जाते तुरन्त रुक गया और फिर उलटे पाँव पीछे को भाग खड़ा हुआ। यद्यपि उसने भरसक चेष्टा की पर तो भी क्रोध में उत्मत्त मक्खियों ने उसकी भी ख़ूब अच्छी तरह से ख़बर ली। शिर, मुख, और हाथ-पाँव में मक्खी ही मक्खी चिपटी हुई थीं। बेचारा व्यर्थ ही इस झगड़े में फंसा। डाक्टर और मोटर की सुधि भूल कर उसे अपनी ही चिन्ता पड़ गई। मक्खियों से पीछा छुड़ाना उसे भारी हो गया। भागते-भागते उसका बुरा हाल हो गया। कभी ज़मीन पर लेटता कभी धूल उड़ाता, कभी झाड़ियों में घुसता, पर मक्खियाँ उसका साथ न छोड़तीं। अन्त में थक कर सड़क पर गिर पड़ा।

इस आकस्मिक घटनावश डाक्टर पाल और ड्राइवर दोनों की ही बुरी दशा हो गई। दोनों ही अपनी-अपनी जगह बेहोश हो कर पड़े रहे। किसी को भी एक दूसरे का हाल पूछने

की सुधि न रही। सारी रात दोनों यूं ही पड़े रहे। दूसरे दिन सुबह ही उधर से एक बैलगाड़ी वाला निकला। ड्राइवर उस समय तक बहुत कुछ स्वस्थ हो चुका था। उसने बैलगाड़ी वाले को रोक कर सारी बातें समझाईं और फिर उसे लिए हुए डाक्टर पाल के पास आया। वे अभी तक बेहोश पड़े हुए थे, सारा बदन सूजा पड़ा था। उन्हें इसी दशा में उठा कर मोटर में डाला और तब मोटर स्टार्ट करके रायपुर की ओर चल दिया।

रायपुर पहुँचने पर भी डाक्टर पाल लगभग चालीस घन्टे तक बेहोश पड़े रहे। उनका सारा शरीर सूज गया था।

तीसरे दिन जब वे कुछ स्वस्थ हुए तो सीधे उठ कर कुंवर सुरेन्द्रसिंह के मकान पर पहुंचे। वहां पहुंचने पर उन्हें केवल रधिया नाम की दासी ही मिली जो कि इस समय बराण्डे में एक चटाई पर बैठी हुई उदास मुख किये सड़क की ओर देख रही थी। डाक्टर साहब के पहुँचने पर उसने तुरन्त भीतर से एक कुर्सी लाकर डाल दी और उस पर उन्हें बैठने का संकेत किया।

डाक्टर पाल ने बैठते हुए पूछा—"कुंवर साहब क्या घर पर नहीं हैं?"

रधिया ने उतरे मन से जवाब दिया—"वे तो आज पांच दिन से घर पर नहीं आये।"

"घर पर नहीं आये?" चौंकते हुए वे बोले—"क्या मतलब? कहीं बाहर गये हुए हैं क्या? कहाँ गये हैं कुछ बता कर नहीं गये?"

दासी बोली, "यही तो दुःख की बात है। इस घर में मुझे पूरे तीस वर्ष रहते हुए बीत गये, पर आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ। स्वयं कुंवर साहब को मैंने पाल पोष कर इतना बड़ा किया और वे भी इसे भली प्रकार जानते हैं। कहीं भी जाते समय वे मुझसे अवश्य कह जाते थे परन्तु इस बार न जाने क्यों ऐसा हुआ। उनके लिये मन हर समय चिन्तित रहता है। भगवान जाने कहां कैसे होंगे।"

"क्या उनके बारे में कुछ भी नहीं बता सकोगी?" डाक्टर ने पुनः प्रश्न किया।

वह बोली, "जो जानती थी वह बता चुकी हूँ इससे अधिक जानती भी नहीं हूँ। अपने सन्देह के आधार पर कह सकती हूँ कि शायद व उसी लड़की की खोज में यहां से ग़ायब हुए हैं क्योंकि उसी दिन से वे भी लापता हैं।"

"तुम्हारा ख़याल ठीक है। अच्छा, अब मैं चलता हूँ।"

कहते हुए डाक्टर साहब वहां से उठ कर चल दिये। रास्ते भर उनके दिमाग़ में नाना प्रकार के विचार उठते रहे। इस समय उनका क्या कर्त्तव्य है, इस बारे में वे कुछ भी तो स्थिर नहीं कर सके। चंचल मन और भी चंचल हो उठा था। दिल में एक तूफ़ान-सा उठ रहा था।

आठवां परिच्छेद

मीना के ऊपर से मोटर का चक्का उतर कर उसे किसी प्रकार की भीषण क्षति पहुँचाये, इससे पहले ही वह कहीं अधिक संभल चुकी थी। तौ भी, बहुत सावधानी, फुर्ती, और सतर्कता से सँभलने पर भी वह पूर्णतया अपने को उसकी झपट से बचा नहीं सकी थी। पिछले मडगार्ड का एक भाग उसकी साड़ी में उलझ ही गया था जिसके कारण वह कुछ दूर तक मोटर के साथ-साथ उलझी चली गई; किन्तु मोड़ होने से मोटर की चाल अधिक तेज़ नहीं थी इसलिये उसे विशेष कोई चोट नहीं आ पाई थी और वह थोड़ी दूर तक मडगार्ड के साथ उलझी चली जाने के बाद अन्त में शीघ्र ही उससे छुटकारा पा गई।

इस छुटकारे से उसे जितनी ख़ुशी होनी चाहिए थी उससे कहीं अधिक वह इस समय भयातुर हो उठी थी। कुंवर साहब के घर से निकलने के बाद से अभी तक वह निर्जन स्थान ही ढूँढ़ती चली आई थी, क्योंकि वह जानती थी कि जन-साधारण में कोई न कोई परिचित व्यक्ति अवश्य मिल जाने की संभावना है और तब निस्सन्देह उसका पकड़ा जाना अनिवार्य हो जायगा। दुनिया में सबसे अधिक उसे डाक्टर पाल का ही डर था और डर भी कोई साधारण नहीं प्रत्युत उसके रोम-रोम में उनकी

भयानकता व्याप्त थी। यही कारण था कि प्रत्येक व्यक्ति में वह उन्हीं का प्रतिबिम्ब देखा करती और जब कभी उसे दूर से कोई पुरुष आता हुआ दिखाई देता वह तुरन्त अपने को छिपाने की कोशिश करने लग जाती। वह जानती थी कि वह सर्वथा निर्दोष है परन्तु फिर भी न मालूम क्यों उसे अपनी निरपराधता साबित करने का साहस न होता। भगवान जाने क्या था वह रहस्य!

मोटर के झटके से यद्यपि उसे चोट कहीं नहीं लगी थी तदपि सड़क पर गिर अवश्य गई थी, किन्तु दूसरी क्षण ही वह संभल गई और खिसकते-खिसकते सड़क के किनारे जाकर तुरन्त ही झाड़ियों में अलोप हो गई। सड़क के एकदम किनारे होने के कारण वह स्थान भी एकदम से निरापद नहीं कहा जा सकता था अतः उसे वहां से भी खिसकना अधिक श्रेयस्कर था। बड़ी सावधानी से झाड़ियों की जड़ें और टहनियाँ पकड़-पकड़ कर वह वहां से खिसकती ही रही। यह समय उसके लिये वास्तव में बड़ा ख़तरनाक था। एक तो चारों ओर छाया हुआ घना अंधकार, दूसरे जंगल की बड़ी-बड़ी घास और झाड़ियाँ तीसरे साँप-बिच्छू और बिषैले जीव-जन्तुओं का डर,—आह मीना किस पाप के फल से तुझे यह दुःख भोगना पड़ रहा है? इतना सब कुछ होकर भी तो वह एक सुरक्षित स्थान में पहुंच कर सन्तोष की साँस ले रही है। बच्चा अभी भी उसके वक्ष-स्थल से चिपटा हुआ है—उसी के लिये तो वह यह सब दुःख

झेल रही है नहीं तो क्या ज़रूरत थी उसे मारे-मारे फिरने की ।

सहसा उसके कान में आवाज़ आई—"अरे शोफ़र ! इधर तो आओ। टार्च लेते आना साथ में ।" ओह ! भय-विह्वल हो कांप उठी वो। इसी व्यक्ति से तो वह इतना डरती है। उसे क्या मालूम था स्वयं डाक्टर पाल ही उस मोटर में सफ़र कर रहे हैं। इन्द्र का वज्र गिरता अथवा भूमि-कम्प से पहाड़ का पहाड़ ही क्यों न टूट पड़ता तो भी शायद वह इतना घबराने वाली नहीं थी जितना कि डाक्टर पाल के इन कुछेक शब्दों ने उसे मृत-प्राय कर दिया था। यदि अंधकार उसकी सहायता न किये होता तो अब तक कभी की वह उनके चंगुल में फंस गई होती। उसके सौभाग्य से ड्राइवर के पास टार्च भी नहीं निकली नहीं तो अनर्थ ही हो गया था। और फिर—'जाको राखे साईयाँ मार सके नहीं कोय' वाली कहावत को कौन नहीं जानता, मधु-मक्खियों ने तो उसकी पूरी-पूरी सहायता की थी, मानों स्वयं भगवान ही मक्खियों के रूप में उसे इस घोर विपत्ति से उबारने के लिये प्रगट हुए हों।

मीना ने सब कुछ झाड़ी की जड़ में पड़े-पड़े देखा और जब उसे पूर्णतया यह विश्वास हो गया कि ड्राइवर और डाक्टर पाल दोनों ही मधु-मक्खियों का शिकार हो गये हैं, तब वह धीरे-धीरे वहां से खिसकी और उसी प्रकार खिसकते खिसकते पुनः एक बार मोड़ के पास सड़क पर आ गई। बच्चे को लिये हुये

वह अब तक बराबर चलती ही आ रही थी, दो दिन से उसके मुख में अन्न का एक दाना भी नहीं पड़ा था और न अभी पड़ने की आशा ही थी; किन्तु फिर भी वह जितनी जल्दी हो वहां स दूर भाग जाना चाहती थी। पक्के रास्ते से हो कर चलना उसके लिये निरापद नहीं था और रास्ता छोड़ कर जंगल में प्रवेश करना भी विशेष कोई बुद्धिमानी नहीं थी। जीव-जन्तुओं से भरे हुए उस भयानक बन में शायद ही कोई मनुष्य दिन में भी जाना पसन्द करता हो, फिर मीना तो एक स्त्री ही ठहरी और वह भी कोमलाङ्गी एक नवजात शिशु के साथ, जिसने कभी घर से बाहर पांव भी नहीं निकाला होगा।

फिर भी पकड़े जाने के भय से सड़क छोड़ कर चलना ही उसके लिये कहीं अधिक अच्छा था। अतएव मोड़ घूम कर पुनः उसने जंगल में प्रवेश किया और ऊँची-नीची, ऊबड़-खाबड़ ज़मीन को पार करती हुई अपना रास्ता तय करने लगी। पहले की अपेक्षा यह मार्ग कहीं अधिक दुर्गम एवम् कष्टकर था, पर वह थी अपनी धुन की पक्की। बढ़ती ही चली जा रही थी आगे मानों भीषण कष्टों को सहने का वह दृढ़ सङ्कल्प कर के ही घर से बाहर निकली थी, किसी भी साहसिक कार्य को कर डालने का मानों बीड़ा उठा लिया था उसने। वाहरी मीना! तेरा अटल निश्चय। तेरा रहस्य तू ही जानती है, किस आफ़त की मारी बनों में घूमती फिर रही है—भगवान जाने ऐसा कौन गूढ़ रहस्य तुझ में छिपा हुआ है जिसे तू ने कुंवर सुरेन्द्रसिंह

जैसे शुभ चिन्तक को भी बताना उचित नहीं समझा और उसी का यह परिमाण है कि आज तू इधर-उधर भटकती फिर रही है।

वह अब एक ऊंची पहाड़ी पर चढ़ रही थी, सड़क उससे बहुत दूर पाछे छूट गई थी। इधर-उधर ऊंचे पहाड़ों की श्रेणियाँ दूर-दूर तक फैली हुई अन्धकार को और भी घनीभूत किये हुए थीं। ऊपर अनन्त नीलाकाश पर झिलमिलाते हुए छोटे-छोटे तारों की मन्द ज्योति ही इस समय उस मार्ग दिखाने में सहायता पहुँचा रहे थे। पहाड़ी पर अब कांटेदार झाड़ियों की अपेक्षा लम्बी-लम्बी घास और ऊंचे-ऊंचे पेड़ ही दिखाई देते थे जिनसे उसके मार्ग में अब वैसी कोई कठिनाई नहीं रह गई थी। बच्चे को चिपटाए वह जल्दी जल्दी क़दम उठाती हुई आगे बढ़ती चली जा रही थी। दो दिन से भूखी रहने पर भी इस समय न जाने कहां से इतना उत्साह भर गया था उसमें कि थक कर कहीं बैठने का वह नाम भी नहीं लेती थी। हठात् चलते-चलते उसे एक विचित्र-सा शब्द सुनाई दिया। वह डर गयी, परन्तु फिर साहस करके आगे बढ़ने लगी।

पहाड़ी के ऊपर पहुँचने पर उसे ज्ञात हुआ चारों ओर दूर-दूर तक बन और पहाड़ ही पहाड़ फैले हुए हैं--बस्ती अथवा किसी गांव का कहीं नाम भी नहीं है। स्थान तो उसके उपयुक्त ही था,—अत्यन्त मनोरम एवम् सुरक्षित! ऐसे ही स्थान की उसे खोज थी परन्तु प्रश्न था भोजन का, क्षुधा-निवारण के

बिना कभी किसी का काम भी चला है इस दुनिया में ? आपत्ति पड़ने पर मनुष्य सब कुछ भूल जाता है। भूख-प्यास उस समय कुछ भी नहीं सूझती उसे, परन्तु जब वही मनुष्य आपत्ति टल जाने पर दिल मे कुछ हल्का-पन महसूस करता है तब उसे प्यास भी लगने लगती है और भूख भी सताने लगती है। यही हाल इस समय मीना का हुआ। विपद से घबरा कर तो वह यहाँ तक भागती चली आई, भूख-प्यास का ध्यान तक भी नहीं किया उसने, किन्तु अब उसी मीना को जब पकड़े जाने का डर नहीं रहा तो भूख और प्यास दोनों ने ही घर दबाया। थकावट से भी बदन चूर-चूर हो रहा था इस समय तो।

थोड़ा सुस्ताने के ख्याल से वहीं एक पेड़ के नीचे बड़े से पत्थर पर बैठ गई और अपने भविष्य के बारे में नया कार्य-क्रम बनाने लगी। अब उसे कहां जाना होगा, क्या करना होगा, किस तरह इस विपद से छुटकारा पा सकेगी—इन्हीं विचारों में वह इतना तल्लीन हो गई कि इधर-उधर का कुछ भी ज्ञान उसे न रहा। सहसा पेड़ पर बैठे हुए पत्तों के पंख ज़ोर से फड़फड़ा उठे। मीना चिहुंक पड़ी, किन्तु दूसरी क्षण ही उसे मालूम हुआ यह केवल उसका भ्रम था। अपने दिल की इस कमज़ोरी पर उसे स्वयं ही हंसी आ गई, पर तुरन्त ही उसका ध्यान एक ओर को घूम गया। कहीं पास ही अस्पष्ट कल-कल-रव सुनाई दे रहा था। ऐसा जान पड़ता था मानों कोई झरना पहाड़ी के ऊपर से बह रहा हो। भगवान की अद्भुत

लीला का पार कौन पा सकता है ? पत्ती के फड़फड़ाने के कारण ही तो उसका ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ था। पास ही पानी का झरना वह रहा है, यह जान कर मीना बहुत .खुश हुई और बच्चे को वहीं सोता हुआ छोड़ वह उस ओर चल दी।

अधिक नहीं कोई दस क़दम की दूरी पर ही एक छोटा-सा झरना बह रहा था। हाथ मुख धोकर .खूब पेट भर उसने पानी पिया और स्वस्थ होकर पुनः अपनी जगह को वापस आने के लिये घूमी, परन्तु यह क्या ? जहां वह अभी-अभी बैठी थी, और जहाँ उसने अपने उस बच्चे को सुलाया था ठीक उसी जगह उसने देखा दो बड़ी-बड़ी आँखें चमक रही हैं। जान पड़ा मानों कोई हिंसक जीव उस बच्चे के पास खड़ा हुआ उसे उठाने की चेष्टा कर रहा है। यह भयानक दृश्य देख कर मीना एकाकी ही चिल्ला पड़ी। अपने प्यारे बच्चे की दुर्दशा वह भला कैसे देख सकती थी। उसी बच्चे का जिसे वह अपने प्राण से भी अधिक प्यार करती थी और जिसके कारण उसने इतने-इतने कष्ट उठाए थे क्या उसी को वह अब इस तरह किसी हिंसक जीव का शिकार होते देख सकती थी। वह दौड़ पड़ी वहां से और आन की आन में अपने बच्चे के पास जा पहुँची। सामने ही एक बाघ खड़ा था जिसकी दोनों आँखें इस समय भी पूर्ववत चमक रही थीं, अभी भी वह उसी जगह खड़ा था।

बाघ को देख कर वह डरी नहीं प्रत्युत अपने बच्चे को गोद में उठा कर चुपचाप वहीं खड़ी रह गई। उसने जान लिया था

यह उन दोनों का अन्तिम-काल था। जब मरना ही ठहरा तब उसका बच्चा और वह एक साथ ही क्यों न मरें। परन्तु यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह बाघ इस समय भी ज्यूँ का त्यूँ खड़ा हुआ था। यदि चाहता तो क्षण-मात्र में उन दोनों को यमपुरी पहुँचा देता परन्तु ऐसा न करके वह चुपचाप खड़ा हुआ बराबर उसी ओर को देखता ही रहा, मानों पालतू कुत्ता खड़ा हुआ हो। उसी क्षण मीना ने देखा एक विशालकाय काली मूर्त्ति उसी तरफ़ को बढ़ती चली आ रही थी। वह एक हृष्ट-पुष्ट, बलवान, पर अत्यन्त काला भयानक मनुष्य था। शरीर पर केवल एक बाघम्बर लपेटे वह मनुष्य भी उसी बाघ के पास आकर खड़ा हो गया और उसके शिर और पीठ पर हाथ फेरते हुए बड़े प्यार से बोला, "नन्दी !"

उत्तर में बाघ गुर्राया और कुत्ते की तरह अपनी पूँछ हिलाने लगा।

मीना इससे अधिक और कुछ न देख सकी। वह इस समय अचेत होकर गिर पड़ी थी।

नवां परिच्छेद

मीना के भाग जाने और डाक्टर पाल का मोटर साइकिल लेकर चले जाने के बाद ही फिर कुंवर सुरेन्द्रसिंह भी वहां नहीं ठहर सके। घर से निकल वे सीधे गवर्नमेन्ट आर्मी हस्पताल की तरफ़ चल दिये। मीना का हाल जानना उनके लिये अनिवार्य हो उठा था। डाक्टर पाल से वह इतना क्यों डरती है, यही ख़याल बार-बार उनके दिमाग़ में उठ रहा था। इसी को जानने के लिये आर्मी हस्पताल की ओर जा रहे थे। उनके बहुत-से परिचित लोग उस हस्पताल में काम करते थे। पूछने पर अवश्य ही कुछ न कुछ भेद मालूम हो जायेगा।

रायपुर यूं तो कोई प्रसिद्ध जगह नहीं है। विन्ध्याचल की तराई में बसी हुई एक साधारण-सी बस्ती है, किन्तु आजकल युद्ध के कारण पिछले कुछ समय से यहाँ सरकार की ओर से फ़ौज की छावनी डाली गई है जिसकी वजह से धीरे-धीरे यह स्थान भी प्रसिद्ध होता जा रहा है। रायपुर के चारों ओर विन्ध्याचल की ऊंची-ऊंची श्रेणियाँ फैली हुई हैं तथा उनकी तराई में घना जंगल है। जंगल की लड़ाई सिखाने के लिये ही यहाँ छावनी डाली गई है। पक्की सड़कें, पानी के नल, बिजली की रोशनी, डाकख़ाना, तार-घर और हस्पताल आदि सभी चीज़ों का इन्तज़ाम हो गया है।

कुंवर साहब वहां के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से थे। अपनी ज़मींदारी में से बहुत सी ज़मीन इन्होंने पल्टन वालों को दे दी थी जिससे सरकार में भी उनकी पहुँच भली प्रकार थी। कहीं भी आने जाने में उन्हें कोई रुकावट नहीं थी। अपने घर से निकल कर वे सबसे पहले आर्मी हस्पताल में गये, यहाँ वे पहले भी अनेक बार डाक्टर पाल के साथ आ चुके थे अतएव हस्पताल के अधिकांश कर्मचारी उन्हें भली भांति जानते थे। दर्वाज़े के भीतर घुसते ही उनकी दृष्टि एक कम्पाउण्डर पर पड़ी जो एक छोटा बक्स-सा उठाये जा रहा था।

उसे देखते ही कुंवर साहब ने पुकारा, "ए ! मिस्टर !! ज़रा सुनना तो।"

कम्पाउण्डर घूमा और इन्हें पहचान कर तुरन्त इनके पास चला आया। अभिवादन करने के बाद बड़े सम्मान से ले जाकर उन्हें एक कमरे में बैठाया और स्वयं दाँत निकाल कुछ खीस निपोरते हुए बोला, "डाक्टर साहब तो नहीं हैं सरकार !"

"हाँ, मुझे मालूम है वे कहीं बाहर गये हुए हैं।" कुंवर साहब ने धीरे से कहा और तब उससे पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है मिस्टर ?"

"जी, लोग मुझे विनोद बाबू कहा करते हैं।" उसने जवाब दिया।

"अच्छा, विनोद बाबू ! एक बात······" बीच ही में कम्पाउण्डर बाधा देकर बोल पड़ा—"जी, आप मुझे विनोद बाबू न कहें। आप तो बहुत बड़े आदमी हैं।"

कुंवर साहब मुस्कुराए और तब उन्होंने पूछा, "फिर क्या कहूँ भाई ?"

वह बोला, "सिर्फ विनोद ही कहियेगा, इतना ही काफ़ी है।"

"अच्छा विनोद ! एक बात बताओगे ?"

"जी, अवश्य बताऊंगा।"

"तुम्हारे यहां हस्पताल में कितने डाक्टर हैं ?"

"डाक्टर तो एक ही हैं,—वही जो आपके यहाँ आते जाते हैं। परन्तु कम्पाउण्डर अनेक हैं। हम सब मिलकर यहाँ चौदह के लगभग होंगे।"

"क्या कहा ? चौदह के लगभग केवल कम्पाउण्डर ही होंगे ?"

"जी सरकार !" कम्पाउण्डर ने नम्रता से उत्तर दिया।

"मगर इतने अधिक कम्पाउण्डर इस छोटी सी जगह में रखने का क्या मतलब ?"

वह बोला, "आपके इसी रायपुर के जंगल में अट्ठारह यूनिट जगल की ट्रेनिंग प्राप्त कर रहे हैं सरकार ! यदि इतने कर्मचारी न रक्खे जायें तो काम कैसे चले ? काम इतना बढ़ा हुआ है कि अभी भी और कर्मचारियों की मांग हो रही है। गत चार मास हुए हस्पताल में स्त्री-विभाग भी खोल दिया गया है। एक लेडी-डाक्टर और दो नर्सें उसमें भी काम करती हैं।'

"स्त्री-विभाग खोलने की ज़रूरत क्यों महसूस हुई ?"

"बर्मा, शत्रु के हाथ में आ जाने के समय से ही यह विभाग

खोला गया है। शायद वहाँ से भागे हुए आततायियों की देख भाल के लिये खोला गया है।"

कुंवर साहब को मालूम हुआ विनोद एक सीधा-सादा कम्पाउण्डर है। उससे जो कुछ पूछा जायेगा निष्कपटभाव से वह सब बतला देगा। कुछ देर चुप रहने के बाद उन्होंने पुनः पूछा, 'अच्छा, विनोद बाबू! वह लेडी डाक्टर किस स्वभाव की है बता सकते हो।"

"सरकार! स्वभाव तो उनका बहुत अच्छा था परन्तु..."

विनोद को बीच ही में चुप होते देख कुंवर साहब बोल पड़े, "स्वभाव तो उनका बहुत अच्छा था परन्तु अब ख़राब हो गया है क्या?"

"अब तो वे यहां हैं नहीं सरकार! आज क़रीब सोलह दिन से भागी हुई हैं—बहुत ढूंढ़ा, कुछ पता नहीं चला।"

कुंवर साहब ने आश्चर्य-चकित गम्भीर मुद्रा बनाये हुए कहा, "कहीं भाग गई हैं? ऐसा क्या अपराध हो गया था उनसे?"

"अपराध तो उनका मैं भी नहीं जानता। ऐसी सीधे-सरल स्वभाव वाली भद्र महिला कोई अपराध करेगी मैं तो आशा भी नहीं कर सकता साहब!"

"क्या नाम था उनका?" कुंवर साहब ने पूछा।

"हमारे डाक्टर साहब कभी-कभी उन्हें मिस मीना के नाम से पुकारा करते थे।"

"मिस मीना ! नाम तो सुन्दर है।"

"सरकार ! काम भी सुन्दर था उनका।" शोकातुर भाव से विनोद बोला, "जब से वे यहाँ आई थीं कभी किसी पर नाराज् होते हुए नहीं देखा, सब के साथ मिल-जुल कर रहती थीं।"

"फिर उन्हें भागने की क्या ज़रूरत पड़ी थी विनोद बाबू?"

"यही बात आज तक मेरी समझ में भी नहीं आई सरकार !"

"अवश्य ही कोई उनके विरुद्ध हो गया होगा नहीं तो इस तरह वे कभी न भागतीं। अच्छा, डाक्टर पाल का व्यवहार कैसा था उनके साथ?"

डाक्टर पाल का नाम सुनते ही विनोद चिहुँक-सा पड़ा। भृकुटि में सिलवटें-सी पड़ गईं, चेहरे पर घृणा के भाव पैदा हुए फिर तुरन्त ही ग़ायब हो गये। आन्तरिक भावों को बड़ी सावधानी से छिपा गया; परन्तु वह नहीं जानता था कि कुंवर साहब की उड़ती दृष्टि से पार पाना उसकी शक्ति के बाहर की बात थी। उन्होंने तुरन्त ही जान लिया कि डाक्टर पाल के प्रति उसके पास कुछ अच्छे विचार नहीं हैं।

थोड़ी देर विनोद को निरुत्तर देख, उन्होंने पुनः एक बार प्रश्न किया, "क्यों विनु-बाबू ! चुप क्यों हो गये? डाक्टर पाल से डरते हो शायद ! मगर ऐसा करने की तुम्हें कोई भी जरूरत नहीं। मैं परिचित अवश्य हूँ उनका, पर इसका यह मतलब नहीं कि हर मामले में वे मेरे दख़ल देते फिरें। सभी बातें कह

देने में कोई हर्ज़ नहीं—गुप्त से गुप्त भेद भी मेरे द्वारा प्रगट नहीं हो सकता।"

"आप जानते हैं सरकार!" विनोद ने रुक-रुक कर कहना शुरू किया, "आप स्वयं जान सकते हैं कि डाक्टर पाल मेरे अफ़सर हैं। यदि उनके विरुद्ध मेरी ज़बान से कोई ऐसा-वैसा शब्द निकल गया तो वे मुझे रसातल में पहुँचा दे सकते हैं।"

"मैं जानता हूँ, खूब अच्छी तरह से जान रहा हूँ कि तुम उनके आधीन हो लेकिन तुमको घबराना नहीं चाहिये। तुम इस समय कुंवर सुरेन्द्रसिंह से बातें कर रहे हो। डाक्टर पाल तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेंगे।"

कुंवर साहब की प्रतिभा को वह भली भांति जानता था। उनसे विमुख होकर कोई कार्य कर सकना उसकी शक्ति से बाहर की बात थी। वे एक दृढ़-प्रतिज्ञ, कर्म-निष्ट, और कर्तव्य-परायण वीर पुरुष हैं—उनसे कोई बात छिपाने की उसे इच्छा नहीं हुई। कुछ अटक कर, इधर-उधर देख, बड़ी सावधानी से वह बोला।

"सरकार! सच पूछिये तो हमारे डाक्टर साहब कुछ अच्छे स्वभाव के आदमी नहीं हैं—वैसे देखने में तो जितने सुन्दर हैं उतने ही सज्जन भी मालूम होते हैं; परन्तु वास्तव में उनका दिल काला है, एकदम काला। जब से उन लेडी डाक्टर की बदली हमारे हस्पताल में हुई तभी से ये महाशय उनके पीछे पड़ गये। बीच में एक घटना ऐसी घटित हो गई जिसको कहते हुए भी संकोच होता है।"

"कहो, कहो, जब कहने बैठे तो पूरी बात सुना डालो। संकोच की क्या बात है।"

विनोद ने पुनः कहना शुरू किया, "सरकार! कोई एक डेढ़ महीने की बात है डाक्टर साहब ने उन्हें बताया कि यहां से क़रीब बीस मील के फ़ासले पर एक प्रसिद्ध स्थान है, उस जगह का नाम शिबपुर है। वहां किसी बड़े घर में कोई डेलीवरी-केस है; एक नर्स को साथ लेकर वहाँ उन्हें तुरन्त ही चले जाना होगा—देरी होने से केस विगड़ जाने की संभावना है।"

"हुक्म पाते ही लेडी डाक्टर तुरन्त तैयार हो गई। साथ में एक नर्स और अपना सब ज़रूरी सामान लेकर वे दोनों वहाँ से आई हुई कार पर सवार हो गये। कार चली गई और उसके बाद एक सप्ताह तक कोई विशेष घटना नहीं हुई। कोई दस दिन बाद लेडी डाक्टर वहाँ से वापस आईं किन्तु इस बार वे अकेली ही थीं—उनके साथ वह नर्स भी नहीं और न वह दवाइयों का बक्स ही था। इस दस दिनों के भीतर ही उनकी काया सी पलट गई थी; जान पड़ता था मानों बहुत दिनों से बीमार हैं। उसी दिन रात में डाक्टर पाल के साथ उनकी बात-चीत हुई। बातें उत्तेजना-पूर्ण थीं जान पड़ता था झगड़ा हो रहा है। डाक्टर पाल पर वे अत्याधिक अप्रसन्न हो उठी थीं। बस उसी दिन से वे ग़ायब हैं।"

"क्या उनकी गोद में कोई बच्चा भी था?" कुंवर साहब ने पूछा।

"बचा ! सरकार उनकी तो अभी शादी भी नहीं हुई थी।"

बात यद्यपि अधूरी थी, पर कुंवर साहब ने इसी से बहुत कुछ समझ बूझ लिया और मन ही मन कुछ निश्चय करके वे तुरन्त ही वहां से उठ खड़े हुए। जाते समय पाँच रुपये का नोट भी विनोद के हाथ में थमाते गये।

दसवां परिच्छेद

घर पहुँच कर कुंवर साहब थोड़ी देर अपनी बैठक में बैठे और सारी बातों पर मन ही मन आद्योपान्त विचार करने लगे। विभिन्न प्रकार के विचारों का इस समय उनके हृदय में द्वन्द्-सा मचा हुआ था। सर्व प्रथम मीना से जंगल में साक्षात्कार होना, फिर घर ला कार उसे आदर सहित रखना, अन्त में हठात् ही एक दिन डाक्टर पाल के आ जाने से उसका ग़ायब हो जाना। सब दृश्य एक एक कर के उनके दिमाग़ में चक्कर लगाने लगे। इस अल्प सम्पर्क ने ही कुंवर साहब को उसके इतना निकट ला फेंका था कि वे उसमें और अपने बीच लेश-मात्र भी कोई अन्तर नहीं समझते थे। उसकी बोलचाल उसकी कुलीनता के द्योतक थे, उसका तर्क उसकी बुद्धि एवम् उच्च-विचारों का परिचायक था। वह बोलते समय हर बात को बड़ी सावधानी से समझ-बूझ कर ही बोलती थी। उसकी शिक्षा, उसका स्वभाव और उसके रहन-सहन का ढग सभी कुछ सराहनीय था।

उन्हें इस समय डाक्टर पाल पर विशेष ग़ुस्सा था। उन्हीं के कारण तो वह इधर-उधर मारी-मारी फिर रही है। यद्यपि पूरे रहस्य से वे अभी भी सर्वथा अनभिज्ञ हैं तथापि जो कुछ उन्हें विनोद कम्पाउण्डर से मालूम हो सका था वही सत्यता

का अन्दाज़ा लगाने के लिये यथेष्ट था। मीना उनकी शरण में आई थी, उसकी रक्षा करना उनका कर्त्तव्य था, डाक्टर पाल को उससे क्या प्रयोजन। डाक्टर को वे अभी तक एक सज्जन एवम् चरित्रवान व्यक्ति समझते थे, पर वे क्या जानते थे कि सज्जनता के आवरण में ढँका हुआ वही व्यक्ति एक विचित्र स्वभाव का भयानक आदमी है। कुछ भी हो, चाहे वह कितना भी भयंकर व्यक्ति क्यों न हो—यदि वास्तव में यह अकारण ही मीना के पीछे पड़ा हुआ है तो इससे उसकी रक्षा अवश्य करेंगे। मन ही मन यह दृढ़ सङ्कल्प कर उन्होंने अपनी दासी को आवाज़ दी।

रधिया आकर चुपचाप उनके सामने ही एक चटाई पर बैठ गई। कुंवर साहब को मालूम भी नहीं हुआ। वे इस समय सिर को दोनों हाथों से थामे नीचे को झुके हुए थे। देर होने पर रधिया ने ही पुकारा, "राजा बाबू!"

कुंवर साहब मानों स्वप्न से जागे हों। आँख मलते हुए बोले, "देखो, बूढ़ी माँ! कुछ दिनों के लिये मैं बाहर जा रहा हूँ, तुम यहाँ सावधानी से रहना।"

"बाहर जा रहे हो। कहाँ जाओगे बेटा?" रधिया घबरा कर पूछ बैठी।

उन्होंने गंभीरता पूर्वक उत्तर दिया, "ज़मींदारी में कुछ झगड़ा हो गया है, मेरे जाये बिना काम नहीं चलेगा इसलिये जाना ही पड़ेगा। तुम मेरे पीछे यहाँ संभल कर रहना, यदि

कभी किसी सहायता की ज़रूरत आन पड़े तो धीरेश को सब बातें समझा देना। वक्त पड़ने पर वह तुम्हारी सहायता करेगा। यदि मेरे वापस आने में अधिक विलम्ब भी हो तो भी घबराना नहीं, सावधानी से रहना।"

बूढ़ी रधिया सशांकित, सन्दिग्ध-दृष्टि से देखती हुइ बोली, "मैं तो खूब सावधानी से ही रहूँगी बेटा! पर तुम कहाँ जा रहे हो यही समझ नहीं पा रही हूँ।"

"अरे कहा तो, ज़मींदारी में कुछ झगड़ा हो गया है उसी को शान्त करने जा रहा हूँ—मेरा विश्वास नहीं होता क्या तुम्हें? कुछ रुष्ट होते हुए बोले।

रधिया तुरन्त नम्र हो गई और बड़ी धीरता पूर्वक बोली, 'तुम्हारा विश्वास नहीं करूँगी तो फिर किस का करूँगी बेटा! आख़िर एक तुम्हारा ही तो सहारा है मुझे। फिर भी बेटा ज़माना ऐसा नहीं कि बिना समझे-बूझे कोई काम किया जाये। तुम कुछ भी हो, तो अभी बच्चे हो। क्या जानो दुनिया की ऊँच-नीच को—बड़ी चालाक हो गइ है आजकल की दुनिया।"

'आख़िर इन सब बातों से मतलब क्या है तुम्हारा?" कुछ झुंझलाते हुए कुवर साहब बोले, "तुम चाहती क्या हो बूढ़ी माँ?"

उसी प्रकार शान्त भाव से रधिया ने उत्तर दिया, "और कुछ नहीं चाहती बेटा केवल यही चाहती हूँ कि बाहर कहीं न जाकर तुम यहीं अपने घर में रहो। मैं जानती हूँ तुम्हारी

ज़मींदारी का कोई काम ऐसा नहीं जिसे तुम यहाँ ही बैठे-बैठे न कर सको—फिर बाहर जाने की ज़रूरत क्या है बेटा ?"

रधिया की बात से कुंवर साहब वास्तव में बहुत प्रभावित हुए। वह उनसे इतना ही स्नेह करती थी। करे भी क्यों न ? आखिर अपनी गोद में खिला कर इतना बड़ा किया था ना। कुंवर साहब के सम्बन्धियों में और था भी कौन ? जो उनकी देख भाल करता—केवल यह वृद्धा ही उनके शुभ चिन्तकों में से एक थी इसी को वे अपनी माँ की तरह सम्मान करते और समय-समय पर उसी के कहे अनुसार काम किया करते थे। आज भी वे चुपचाप बिना बताए हुए चले जाना चाहते थे परन्तु चालाक वृद्धा से कुछ भी न छिप सका और अन्त में हार मान कर बताना ही पड़ा उन्हें सची बात। वृद्धा को जब यह मालूम हुआ कि वे मीना की तलाश में जा रहे हैं तो बहुत दुःखी हुई। समझाने की चेष्टा की उसने, पर सब व्यर्थ हुआ। उनको दृढ़ निश्चय से एक पग भी टसमस करने में वह समर्थ न हो सकी और अन्त में बेचारी को मन मार कर चुप ही हो जाना पड़ा।

कुंवर सुरेन्द्रसिंह ने अपने कमरे में जाकर कुछ जरूरी चीजें साथ ले जाने के लिये तय्यार कीं। एक थैले में कुछ सूखे फलों को भरा और अपनी पीठ पर कस लिया, फिर एक थर्मस में में ठण्डा जल भर कर उसे भी उसी के साथ लटका लिया और तब मेज़ की दराज़ में से एक छोटी-सी, पर बहुत मज़बूत और

सुन्दर पिस्तौल निकाली और सावधानी से उसे अपनी जेब में रख कर घर से बाहर निकले—साथ में गोलियों की पेटी भी कंधे से लटकानी न भूले। बाहर आ कर कुछ देर किसी विचार में निमग्न खड़े रहे और तब अपने घोड़े पर सवार हो वहां से एक ओर को चल दिये। वे जानते थे, इन चार-पांच घन्टों में बच्चे को लिये हुए मीना अधिक से अधिक पन्द्रह या बीस मील जा सकी होगी इससे अधिक जाने की सम्भावना भी नहीं थी। किन्तु गई कहां होगी? यही एक प्रश्न था जो इस समय ज़ोरों से उनके दिमाग़ में उठ रहा था। विन्ध्याचल का घना जंगल कोई साधारण वस्तु नहीं, जो इतनी आसानी से वह हाथ आ जायगी।

रायपुर से होती हुई केवल एक ही पक्की सड़क दक्षिण को जाती है जो आगे चलकर दो हिस्सों में बँट जाती है। उनमें से एक तो बाईं तरफ़ वाली सीधी शिवपुर चली जाती है और दूसरी दाईं ओर को घूम कर कौशलगढ़ चली जाती है। इस मार्ग पर आजकल अधिक यातायात न होने के कारण सड़क भी टूटी-फूटी पड़ी है—जान पड़ता है मुद्दत से इसकी मरम्मत नहीं की गई है। कभी-कभी भील लोग अपनी बैलगाड़ी पर इस रास्ते से आते जाते हैं। पाटलपानी से दोनों रास्ते अलग-अलग हो जाते हैं। यहीं पर कौशल नदी की छोटी धारा तंग और छोटी-सी घाटी में बहती हुई आगे चल कर नर्बदा के तीव्र प्रवाह में मिल जाती है। यहां से आगे चल कर कौशल-गढ़ का टूटा-फूटा क़िला अभी भी भग्नावशेष दशा में खड़ा

हुआ अपनी पूर्व स्मृति की याद दिलाता है। यद्यपि आजकल उसमें कोई भी सभ्य मनुष्य रहना पसन्द नहीं करेगा तदपि चमगादड़ों और अन्य जीव जन्तुओं का निवास स्थान बना हुआ है अभी भी वह आबाद है। चीं-चीं, चख़-चख़ प्रायः हर समय सुनाई देता है। दिन के समय भी शायद कोई उनके भीतर घुसने का साहस नहीं करेगा।

कुंवर साहब अपने घोड़े को अभी तक सरपट दौड़ाए चले जा रहे थे। परन्तु पाटलपानी के मोड़ पर पहुँच कर उन्हें उस की चाल धीमी करनी पड़ी। एक तो दस बारह मील से वे बराबर दौड़ते चले आ रहे थे, दूसरे पहाड़ पर घूम घूमावदार रास्ता होने के कारण ज्यादा तेज़ चलना ख़तरे से ख़ाली नहीं था। कोराल नदी के किनारे पहुंच कर उनका घोड़ा एक बार ज़ोर से हिनहिनाया। कुंवर साहब घोड़े की आवाज़ सुनते ही सावधान होकर इधर-उधर देखने लगे—दूर-दूर तक फैला हुआ विस्तृत जंगल और पहाड़, इसके अतिरिक्त और कुछ भी उन्हें मालूम नहीं पड़ा। फिर तुरन्त ही उन्हें ख़याल हुआ पानी देख कर ही घोड़ा हिनहिनाया था, उन्हें स्वयं भी प्यास लगी हुई थी अतः तुरन्त ही घोड़े से उतर कर उसे पानी पिलाया फिर एक लम्बी रस्सी द्वारा पेड़ से बांध दिया। हरी-हरी घास पर घोड़ा घूम-घूम कर चरने लगा। इसके बाद कुंअर साहब ने भी हाथ मुख धोकर थैले में से थोड़ा सूखा मेवा निकाल कर खाया और पानी पीकर एक पत्थर पर बैठ आराम करने लगे।

स्थान बड़ा मनोरम था। जिधर देखो, उधर ही पहाड़ों और मैदानों पर हरितावाण-सा चढ़ा हुआ ज्ञान होता था। पास में कोराल का झरना एक ऊँची चट्टान से टकरा कर स्वच्छ फेन पैदा कर रहा था—पत्थरों से टकरा कर झरने का भीम-गर्जन दूर-दूर तक वन और पहाड़ों में गूँज रहा था। कुंवर साहब झरने के किनारे ही एक बड़े से पत्थर पर बैठे हुए प्रकृति के इस अनुपम सौन्दर्य को देख रहे थे। सूर्यास्त होने में भी अधिक विलम्ब नहीं था। पश्चिमी क्षितिज पर लालिमा दूर-दूर तक फैल चुकी थी अतः कुंवर साहब ने अब अधिक वहां ठहरना उचित नहीं समझा। चलने के लिये उठे और अपने घोड़े के पास आकर उसे ठीक करने लगे।

घोड़े पर चढ़ने के लिये जैसे ही उन्होंने एक पैर रक़ाब में रक्खा वैसे ही किसी ने कर्कश स्वर में पीछे से कहा, "कहाँ जाता है?"

कुंवर साहब हैरान हो गये। इस निर्जन स्थान में जहाँ अभी कुछ क्षण पहले कोई भी नहीं था, यह कौन आ गया उन्हें पूछने वाला। तुरन्त ही उन्होंने घूम कर देखा तो एक लम्बा चौड़ा विशाल-काय काला मनुष्य बाघम्बर लपेटे एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में कमण्डल थामे उनके सामने खड़ा है। उसकी रक्तवर्ण आँखों से भयानकता टपक रही थी। एक बार पुनः उसने कर्कश स्वर में कहा; "चलो मेरे साथ।"

और तब कुछ सोच कर कुंवर साहब उसके साथ-साथ चल दिये।

ग्यारहवां परिच्छेद

कौशलगढ़ का दुर्ग जो कभी मजबूती और सुदृढ़ता में अपना सानी दूर-दूर तक नहीं रखता था इस समय उसका भग्नावशेष चिन्ह केवल अतीत का स्मृति-मात्र ही रह गया है। टूटी-फूटी दीवारें अब भी उसकी प्राचीन दृढ़ता की साक्षी हैं। वही गढ़ जो कभी वहां के निवासियों के लिये क्रीड़ा-स्थल रहा होगा अब केवल चमगादड़ों, कबूतरों और अन्य जंगली पशु-पक्षियों का निवास-स्थान रह गया है। मानव समाज में कोई भी उसकी बात पूछने वाला शेष नहीं जान पड़ता अलबत्तः अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित कभी-कभी डाकू दल वहां आकर अवश्य विश्राम कर लेता है। भील लोगों का झुण्ड का झुण्ड कभी-कभी उसके सामने से कच्ची सड़क पर निकल जाता है, पर इसकी ओर कोई आँख उठा कर भी नहीं देखता। कौशलगढ़ के नीचे ही मेंहदीकुण्ड के तंग और छोटे से दर्रे के बीच से कोराल का स्वच्छ और साफ़ झरना गिरता हुआ बहुत सुन्दर और भला मालूम होता है। मेंहदीकुण्ड के चारों ओर दूर-दूर तक हरा भरा जंगल फैला हुआ है।

कोराल के मुहाने पर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों के बीच एक छोटी सी गुहा है। उस गुहा के सामने एक बरगद का पेड़ इस समय भी खड़ा हुआ है। बरगद का पेड़ बहुत बड़ा है; उसकी मोटी शाखें

चारों ओर फैल कर अपने नीचे अच्छी ख़ासी छाया किये हुए हैं। सुनते हैं वह पेड़ सैकड़ों बरस का पुराना होने पर भी अभी भी जैसे का तैसा खड़ा है। उसकी लम्बी-लम्बी लटकती जटाएँ किसी पहुँचे हुए सन्यासी की बढ़ी हुई जटाओं से कम नहीं हैं। बरगद की जड़ के नीचे एक विशालकाय काले सन्यासी का धूना हर समय सुलगता रहता है। अपनी आँखों को मूंदे सन्यासी इस समय मौन भाव से बैठा हुआ किसी ध्यान में निमग्न है। उसकी भाव-भङ्गिमा से तेजीस्वता एवम् गंभीरता की अपेक्षा क्रूरता के भाव ही अधिक परिमाण में परिलक्षित हो रहे हैं। सिर पर जटाओं की भारी कुंण्डलाकार गठरी-सी बाँधे, दाढ़ी बढ़ाये वह सन्यासी ठीक एक भयानक पिशाच के समान मालूम होता है। उसकी बलिष्ठ भुजाएँ असाधारण बल की परिचायक हैं।

कुछ क्षणोपरान्त सन्यासी बाबा ने आँखें खोलीं और मुख के आगे चुटकी बजाते हुए एक लम्बी जम्हाई खींची। रक्तवर्ण नेत्रों को चारों ओर घुमाकर एक बार उन्होंने कुछ देखने की चेष्टा की,—फिर अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही पुकारा--"नन्दी" एक बार, दो बार, तीन बार—फिर बार-बार पुकारने पर भी जब नन्दी वहां नहीं आया तो स्वयं कुछ बुदबुदाते हुए वहाँ से उठे और मेहन्दी कुण्ड के आस पास चक्कर लगा कर उसे देखने लगे। परन्तु इधर उधर कहीं भी जब नन्दी उन्हें दिखाई नहीं दिया तो वापस अपने धूने के पास चले आये और ज़मीन

में गड़ा हुआ त्रिशूल उखाड़ कर एक हाथ में लिया और दूसरे से कमण्डल उठा कर कोराल के किनारे-किनारे दक्षिण-दिशा को चलने लगे।

कुछ दूर जाकर नित्य क्रिया से निवृत हो उन्होंने झरने के स्वच्छ जल में स्नान किया फिर अपनी गुहा के सामने वापस चले आये और धूने से राखी लेकर सारे शरीर में लेप करके निश्चिन्त हो पुनः एक बार धूने के आगे अपने आसन पर आसीन हो गये। कुछ देर यूँ ही बैठे रहने के पश्चात् अपने पीछे उन्हें कुछ खड़ खड़ का शब्द सुनाइ पड़ा। पीछे घूम कर देखा तो एक बाघ पहाड़ी पर से कूदता-फांदता इन्हीं की तरफ़ भागता चला आ रहा था। उसे देख ककेश स्वर में इन्होंने पूछा।

"नन्दी! कहां था रे तू? भोला कहां है?"

सन्यासी बाबा का ककश शब्द सुन कर नन्दी कुत्ते की तरह अपनी पूँछ हिलाने लगा, मानों इनके तेज के आगे एक बाघ का आत्म-सम्मान कोई मूल्य ही नहीं रखता। उसे चुप देख बाबा जी ने पुनः एक बार कहा।

"कहां था रे! भोला कहाँ है?"

इस बार नन्दी गुर्राया और अपनी लम्बी पूँछ को तीन बार ज़मीन पर पटक कर गुहा की तरफ़ को मुख करके वहीं लेट गया। यह एक संकेत था जिसे शायद बाबा जी के सिवा और कोई भी नहीं समझ सकता था। इसके बाद उन्होंने और कोई प्रश्न उससे नहीं किया और चुपचाप अपने धूने के पास बैठ

हुए किसी के आने का इन्तज़ार करने लगे। नन्दी कुछ देर वहीं पड़ा रह कर अपने नाखुनों से ज़मीन कुरेदता रहा फिर सहसा उठ कर गुहा की तरफ़ को झपटा और उसमें घुस कर अदृश्य हो गया।

सन्यासी बाबा और अधिक वहां बैठे नहीं रह सके। जान पड़ता था किसी के आने की कल्पना ने उन्हें अधीर कर दिया है। वे उठे और गुहा में जाने के लिये घूम पड़े; किन्तु उसी वक्षण कुछ लोगों के आने की उन्हें पद-ध्वनि सुनाई पड़ी। वे ठहर गये और आने वाले का इन्तज़ार करने लगे। दूसरी क्षण उन्हीं के समान एक दूसरा भीमकाय मनुष्य उसी गुहा में से निकला। उसके कंधों पर लटका हुआ धनुष और पीठ पर तीरों से भरा हुआ तरकश था। पीछे-पीछे वह बाघ भी उन्हीं के पास आकर खड़ा हो गया। उसे देख बाबा जी ने पूछा।

"भोला! बहुत देर लगाई! तुम कहां थे अभी तक?"

भोला ने उनके चरणों की धूलि अपने माथे पर लगाते हुए कहा, "गुरुदेव! आज हमारा मनोरथ सफल हुआ। आपकी तपस्या और मेरी सेवाओं की सफल साधना पूरी होने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। इतने दिनों के कठिन परिश्रम के बाद आज मैं अपने गुरु का सच्चा सेवक कहलाने का अधिकारी हो सका हूँ। महामाया मातेश्वरी काली का प्रसाद पाकर......।"

गुरुदेव ने भेद भरी दृष्टि से चारों ओर देख कर जल्दी से

पूछा, "भोला ! तू बक क्या रहा है ? मेरी तो समझ में ही कुछ न आया। मां के चरणों पर बलि देने का सामान पूरा हो गया क्या ?"

"पूरा हो गया गुरुदेव ! आज सब कुछ पूरा हो गया।" आवेश में भोला बकता चला गया, "स्त्री, पुरुष और बच्चा। इन तीनों को बलि देकर आज अपनी तपस्या को सफल कीजिये महामाया ने आपको स्वप्न दिखाया था ना ? अब उनका वही स्वप्न पूरा करके अपनी पूर्ण-सिद्धी को प्राप्त कीजिये। संसार में फिर कोई भी आप की बराबरी नहीं कर सकेगा। राजा को रंक और रंक को राजा करना आपके लिये कोई कठिन न होगा। संकेत-मात्र से पहाड़ों को धूरि में मिला सकेंगे। दिग-चक्रवाल आपके इशारे पर नाचेंगे—ओ हो हो हो······हा···हा······हा।"

और एक बार उसके पैशाचिक अट्टहास से वह स्थान दूर-दूर तक गुंजार उठा। इस समय सन्यासी बाबा, नहीं बल्कि जिन्हें अब कपालिक बाबा कहना ही ठीक होगा—हर्षोन्मत हो नाच उठे। त्रिशूल उठाये-उठाये सात बार उस बड़े बरगद के चारों ओर घूमे और तब एक ओर जाकर किसी पशु का रक्त-रंजित ताज़ा मांस लाकर उस धूने में छोड़ दिया, ऊपर से कमण्डल भर कोई तरल पदार्थ छोड़ा। तरल पदार्थ मदिरा के सिवा और क्या होगा। इन दोनों के सम्मिश्रण से अग्नि धू-धू कर जल उठी। क्षणमात्र में वह स्थान मांस और मदिरा की दुर्गंधि से भर गया। आकाश में धुआं ही धुआं था।

इसके बाद गुरु महाराज ने एक कमण्डल भर कर मदिरा स्वयं पी और जो कुछ बची उसे अपने शिष्य के आगे बढ़ा दिया। गुरु का प्रसाद जान भोला बड़े प्रेम से गटागट उसे चढ़ा गया; किन्तु इससे उसकी तृप्ति कहां हो सकती थी अतः गुरु की नज़र बचा कर एक कमण्डल और भरा और पलक झपकते एक सांस में सब की सब वे चढ़ा गया। गुरु और चेला दोनों नशे में झूमने लगे। त्रिशूल उछाल-उछाल कर दोनों बड़ी देर तक नाचते रहे। कभी बट-वृक्ष के चारों ओर घूमते, कभी गुहा के दर्वाज़े पर आकर विचित्र प्रकार से नाचते, कभी कुछ करते और कभी कुछ। बडा विचित्र और भयावना था उनका वह नाच।

अपने साथियों को नाचता हुआ देख नन्दी भी खड़ा-खड़ा झूमने लगा, मानों वह भी उन्हीं की तरह किसी देवी का उपासक है। जिन लोगों ने भालू का नाच देखा होगा वे लोग बहुत आसानी से इस समय नन्दी के नाच का अनुमान लगा सकते हैं। दो पैरों पर खड़ा हुआ वह इस समय ठीक एक रीछ की तरह नाचता हुआ-सा प्रतीत हो रहा था। आगे के दोनों हाथों को वह ठीक वैसे ही घुमा रहा था जैसे कि भालू नाचते समय घुमाया करता है। लगभग आध घण्टा तक तीनों इसी तरह झूमते और नाचते रहे। कोई किसी से इस समय बोल नहीं रहा था। सब अपनी-अपनी धुन में मस्त थे।

सहसा कपालिक ने झूमते हुए कर्कस स्वर में पुकारा, "भोला!"

"जी गुरुदेव !" भोला ने तुरन्त संभल कर उत्तर दिया।

"चलो, आज ही चल कर अपनी कठिन तपस्या का अन्त कर डालें।"

"आज ?" आश्चर्य से भोला ने पूछा।

"हाँ आज, बल्कि अभी।" दृढ़ता पूर्वक उसने उत्तर दिया।

"परन्तु आज तो वह दिन, वह मुहुर्त, और वे नक्षत्र ही नहीं हैं गुरुदेव !"

"कोई हर्ज़ नहीं भोला ! शुभ कामों में इन सबकी ज़रूरत नहीं होती। चलो, आज ही चलो, जितनी जल्दी हो सके इस काम को कर डालें। फिर कौन जाने क्या हो ? ऐसे शुभ अवसर बार-बार हाथ नहीं आया करते—समझे !"

"जी समझा गुरुदेव ! परन्तु आज तो किसी भी सूरत से यह काम नहीं हो सकेगा !"

"नहीं हो सकेगा। क्यों नहीं हो सकेगा ?" क्रोधोन्मत्त कपालिक अपनी बड़ी-बड़ी रक्त-रंजित आँखों से घूरता हुआ आगे बढ़ा, मानों क्षण भर में उसे भस्मीभूत कर डालेगा। भोला डरा नहीं, निश्चल भाव से ज्यूँ का त्यूँ खड़ा रहा।

कपालिक बढ़ता ही गया और ठीक उसी के सामने आकर कर्कश स्वर में बोला "चलो, चलो मेरे साथ। अब अधिक विलम्ब नहीं किया जा सकता।"

भोला इस समय भी ज्यूँ का त्यूँ खड़ा हुआ था मानों कुछ

सुना ही नहीं उसने। यह जानते हुए भी कि उसके गुरु का क्रोध क्षण-क्षण पर बढ़ता जा रहा है वह निश्चल गति से चुपचाप खड़ा हुआ था। कपालिक से न रहा गया। इस बार उसने अत्यन्त रोषपूर्ण शब्दों में कहा, "भोला! तू नहीं जानता मेरे क्रोध को? यदि अब अधिक विलम्ब किया तो नन्दी तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा।"

नन्दी का नाम सुनते ही भोला को मानों काठ मार गया और वह चुपचाप गुहा की तरफ़ चल दिया। उसके पीछे कपालिक और फिर नन्दी,--तीनों इस समय उस गुहा के भीतर घुस कर अदृश्य हो गये थे।

बारहवां परिच्छेद

शुरु-शुरु में गुहा का मुख इतना खुला हुआ था कि उसमें एक हाथी भी बड़ी आसानी से चला जा सकता था परन्तु ज्यूं-ज्यूं कपालिक, भोला और नन्दी आगे चलते जाते त्यूं त्यूं वह तंग और छोटी होती चली जाती थी। अन्त में उसका विकास इतना कम हो गया कि उन दोनों को झुक कर चलना पड़ा। इस समय गुहा में घोर अंधकार छाया हुआ था और उन लोगों को हाथ से टटोल-टटोल कर आगे बढ़ना पड़ता था। चलते-चलते गुहा और भी संकीर्ण होती चली गई और उसका विकास क्रमशः घटता ही गया।

सब से आगे कपालिक, फिर भोला और तब नन्दी चुपचाप उसके भीतर चले जा रहे थे। चलते-चलते हठात् कपालिक उछल पड़ा और उसका सिर गुहा की पत्थरीली चट्टान से टकरा कर एक विचित्र प्रतिध्वनि पैदा कर उठा। पीछे चलता हुआ भोला उसके ऊपर गिरते-गिरते बचा; संभल कर उसने देखा कपालिक उस समय तक चक्कर खाकर नीचे गिर चुका था। गुरु की यह दुर्दशा देख भोला आश्चर्य-चकित हो उसकी ओर खड़ा हो देखता ही रह गया। उसकी समझ में इस आकस्मिक घटना का कारण कुछ भी न आया।

सहसा कपालिक के मुख से एक दर्दनाक 'आह' निकली

और वह इधर-उधर करवट बदलता हुआ अत्यन्त करुणापूर्ण दृष्टि से भोला की ओर देखने लगा। भोला को अपने गुरु की दुर्दशा पर बड़ी दया आई। यद्यपि उसका कठोर व्यवहार वह इस समय भी भूला नहीं था तदपि गुरु की दुरवस्था उससे देखी नहीं गई और वह तुरन्त उसके पास बैठ कर सहानुभूति पूर्ण शब्दों में पूछने लगा, "क्या हुआ गुरुदेव! हुआ क्या आप को?"

कपालिक ने बड़ी कठिनाई से कराहते हुए कहा, "भोला! तुम्हारा कहना न मान कर मैंने सख्त ग़लती की। वास्तव में हर काम शुभ मुहूर्त में ही किया जाना चाहिये। तुम्हारी बात की उपेक्षा करके मैं आज ही यह काम कर डालना चाहता था, पर अब मैं देखता हूँ उसका फल भी मुझे हाथ के हाथ मिल गया है—आह! बड़े ज़ोर की वेदना हो रही है भोला!"

"किन्तु हुआ क्या आपको गुरुदेव!" भोला ने उत्सुकता से पूछा।

"बिच्छू! आह एक विषैले पहाड़ी बिच्छू ने पैर में काट खाया है।" तड़फते हुए कपालिक ने दो तीन बार इधर-उधर करवट बदली।

भोला ने शीघ्रता से इधर-उधर झांकते हुए कहा, "बिच्छू! कहां है वह बिच्छू? यहाँ तो कहीं मालूम नहीं पड़ता गुरुदेव! ओह, कितना छाया हुआ है अंधकार इस गुहा में। कैसे ढूँढ़ उस पाजी को?"

"उसे तो मैं ने पैर से कुचल दिया है बेटा ! देखो उधर मेरे पाँव के नीचे पड़ा होगा। आह ! आह ! विष के मारे सारा शरीर अकड़ा जा रहा है।"

भोला ने टटोल कर बिच्छू को उठाया। ओफ़ ! कितना बड़ा और भयानक था वह बिच्छू ! पूरा आधा सेर का रहा होगा, पुराना एकदम से सिर पर और पीठ के इधर उधर भूरे रंग के बाल तक उग आये थे। गहरे नीले रंग का वह बिच्छू कितना ज़हरीला रहा होगा।

बिच्छू को वहीं छोड़ उसने कपालिक से पूछा, मुझे क्या आदेश करते हैं' गुरुदेव ! आपको गुहा के इस पार ले चलूँ अथवा वापस धूने पर चलना चाहते हैं। गुहा-मार्ग भी अब समाप्त ही होने वाला है यदि आज्ञा हो तो आप को इसी ओर ले जाकर खुली हवा में रक्खूं।"

कपालिक ने बड़ी अधीरता से उलटते-पलटते कहा, "नहीं भोला ! इधर जाने की अपेक्षा तो मैं अपने धूने पर चलना ही अधिक पसन्द करता हूँ। यदि हो सके तो नन्दी की सहायता से मुझे वहीं पहुँचाओ जल्दी से।"

भोला ने तत्क्षण अपने गुरु को उठा लिया और आधी देह नन्दी के ऊपर लाद कर आधी को स्वयं संभाले हुए चल दिया वापस धूने की तरफ़ को। मार्ग में विशेष और कोई घटना नहीं हुई सिवाय इसके कि कपालिक विषाक्त वेदना से तड़फता हुआ कभी कभी जोर से चीत्कार कर उठता और तब बड़ी कठिनाई

में भोला उसकी भारी देह को नन्दी की पीठ से गिरते-गिरते संभालता।

गुहा से बाहर आकर भोला ने कपालिक को धूने के पास ही एक मृग छाला पर लेटा दिया और तब उसकी आज्ञा से एक कमण्डल भर मदिरा उसे पिला दी। मदिरा पीते ही मानों आधा दर्द उसका जाता रहा। इसके बाद कपालिक ने भोला को एक बूटी लाने के लिये कहा। बूटी की पहचान उसने उसे पहल से ही बता रक्खी थी अतः वह तुरन्त उसे लेने चला गया।

कोराल के किनारे-किनारे थोड़ी दूर जाने पर भोला को वह बूटी मिल गई। पानी से तर गीली ज़मीन में वह बूटी बहुत दूर तक फैली हुई थी। छोटे-छोटे गोल चिकने पत्ते वाली बूटी जिसकी महीन लाल रंग की टहनियों में असंख्य पीले रंग के फूल फूले हुए थे, देखने में बड़ी सुन्दर लगती थी। भोला ने जल्दी-जल्दी थोड़ी बूटी उखाड़ कर वहां से प्रस्थान किया।

धूने के पास आ कर उसने उस बूटी की जड़ और पत्तों को एक जगह पीसा और उसमें थोड़ी सी धूने की भस्म मिला कर लुगदी सी बनाई और तब उस टिकिया को बड़े यत्न से अपने गुरु के पाँव में काटी हुई जगह पर बांध दिया, फिर उसी बूटी के फलों का रस कमण्डल में निकाल कर कपालिक को पिला दिया। फूलों का रस पीते ही कपालिक को बहुत शान्ति मिली।

बूटी के प्रभाव से उसकी वेदना तुरन्त कम हो गई और वह अपने स्थान पर स्वस्थ चित्त से बैठ गया ! इस समय वह अपने शिष्य पर बहुत ख़ुश था।

कृतज्ञता पूर्ण दृष्टि से देखता हुआ कपालिक बोला, "वाह भोला ! आज तो तूने बड़ा उपकार का काम किया, महामाया काली तेरा कल्याण करें।"

"गुरुदेव ! यह सब आप ही की कृपा का फल है, मैं तो आपका एक सेवक-मात्र ही हूँ। आपकी आज्ञानुसार ही सब काम करना सीखा हूँ।"

कपालिक अपने शिष्य की नम्रता से सन्तुष्ट हो ख़ुशी में झूमता-सा बोला, "मातेश्वरी की असीम कृपा से तेरा मनोरथ शीघ्र सफल होगा बेटा ! वह दिन दूर नहीं जब कि परमसिद्धि को प्राप्त करके तू शीघ्र ही मेरे बराबर हो जायगा।" फिर कुछ क्षण ठहर कर बोला, "अच्छा ! उन लोगों को रक्खा कहां है तूने ?"

"मातेश्वरी के मन्दिर वाली गुहा में वे लोग सुरक्षित हैं।" उसने उत्तर दिया।

"सावधानी से उनकी देख भाल करना, कहीं भाग न जायें।"

"मैं अभी जा कर उनकी ख़बर लेता हूँ।" कहता हुआ भोला उठ कर वहां से चला गया। उसके पीछे ही नन्दी भी उठ कर चल दिया।

तेरहवाँ परिच्छेद

चारों तरफ़ से ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों से घिरा हुआ वह छोटा-सा स्थान जो देखने में ठीक एक छोटे दुर्ग के सदृश्य ज्ञात होता है, बड़ा भयावना एवं हृदय को विकम्पित कर देने वाला स्थान है। दूर तक पहाड, उससे भी दूर दूर तक केवल पहाड़ ही पहाड़ नज़र आते हैं। पहाड़ों की चोटियाँ इतनी ऊँची हैं कि उस ओर देखने से केवल धुवाँ-सा ही दिखाई देता है जो अनन्त नीलाकाश से मिल कर ठीक उसी के समान हो गया है। इस स्थान से बाहर निकलने के लिये कोई गुहा अथवा कोई भी मार्ग दिखाई नहीं देता है।

किन्तु आश्चर्य है ऐसे दुर्गम स्थान में भी एक ओर समतल से थोड़ा ऊँचाई पर एक छोटा-सा मन्दिर बना हुआ है। मन्दिर बहुत पुराना और कहीं-कहीं से टूट-फूट भी गया है। पहाड़ काट कर बनाया हुआ यह छोटा-सा काली-मन्दिर दो सौ वर्ष से भी पहले का बना हुआ मालूम होता है। उस समय अवश्य ही यहाँ कौशलगढ़ और इधर-उधर के रहने वाले पूजा-पाठ करने आते होंगे; परन्तु इस समय की स्थिति देखते हुए तो यह एक असम्भव-सा ही मालूम होता है। कौन मरने जायगा ऐसे भयानक स्थान में।

मध्यान्ह का समय है। भगवान अंशुमाली अपना आधा सफ़र तय कर के इस समय आकाश के ठीक ऊपर विराजमान हैं। सौभाग्य से उस स्थान में थोड़ी देर के लिये यत्र-तत्र कहीं-कहीं धूप की चमक दिखाई देने लगी है। ऐसे ही समय मन्दिर के सामने हरी-हरी घास पर एक स्त्री बैठी हुई अपने गीले बालों को सुखा रही है,—उसके पास ही मृग-छाला पर पड़ा हुआ एक छोटा-सा बच्चा अपने पैर के अंगूठे को मुख में दबाए चूस रहा है। धूप में पड़ा हुआ बच्चा कितना सुन्दर लग रहा है।

कौन? मीना! ओफ़! इन दो दिनों के भीतर ही बेचारी की कैसी शोचनीय अवस्था हो गई है। मैली साड़ी से अपने शरीर को ढाँके हुए वह इस समय भी सन्तुष्ट मालूम होती है। जान पड़ता है डाक्टर पाल के हाथों अपमानित होने की अपेक्षा यहाँ वह माँ काली की भेंट चढ़ जाना कहीं अधिक उत्तम समझती है। एक बार मर जाने पर फिर इस संसार का तमाम झगड़ा ही मिट जायगा। बच्चा और वह दोनों ही इस समय प्रसन्न नज़र आते हैं। मीना चुपचाप बैठी हुई इस समय सामने की ओर टकटकी लगाये देख रही है मानों कोई विचित्र चीज़ हो वहाँ।

उसके ठीक सामने एक ऊँचा पहाड़ सीधी दीवार की तरह खड़ा हुआ था। उसके बीच में कोई घास अथवा पेड़ नहीं था। केवल मोटी-मोटी बन्यलताएँ ही ऊपर से नीचे तक झूल रही थीं। सहसा पहाड़ के ऊपर की लम्बी-लम्बी घास उसे हिलती-

सी जान पड़ीं। क्षण भर बाद ही उसने देखा किसी मनुष्य का सिर उसके भीतर से निकल रहा था और क्रमशः बढ़ते-बढ़ते पूरी एक आकृति मनुष्य की उसमें से निकल कर सामने खड़ी हो गई। मीना ने देखा, और अवाक् हो देखती ही रह गई।

इस समय उसने जो कुछ उस पहाड़ी पर देखा, उसका उसे स्वयं ही अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। वह नहीं समझ सकी कि जो कुछ वह देख रही है—वह सत्य है अथवा स्वप्न-मात्र ही। अपनी आँखों को मल कर एक बार, दो बार, फिर बार-बार वह उसी तरफ़ देखती रह गई। यह क्या भगवान ? जो कुछ वह देख रही है वह सत्य ही है अथवा प्रकृति का उसके साथ यह उपहास-मात्र ही है। कोई जादूगर अपनी माया से यह सब खेल तो नहीं कर रहा है ? उसने देखा पहाड़ी की ऊँची चोटी पर कुंवर सुरेन्द्रसिंह खड़े हुए हैं।

कुंवर साहब ने भी मीना को उसी आश्चर्य-चकित दृष्टि से देखा मानों उन्होंने भी उसके वहाँ होने की कल्पना भी नहीं की थी। क्षण भर तक दोनों ही एक दूसरे को विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देखते रहे, फिर दोनों ही को सहसा अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। कुंवर साहब ने ऊपर से ही चिल्ला कर कुछ पूछा, परन्तु वह आवाज़ दूर होने के कारण मीना के पास तक नहीं पहुँच सकी। मीना इस फ़ासले को कम करने के ख़्याल से वहां से उठी। उसने सोचा पहाड़ी के नीचे पहुँच कर शायद वह अवश्य ही उनसे बातचीत कर सकेगी।

उठ कर वह ज्यूं ही उस ओर जाने को उद्यत हुई त्यूं ही हठात् उसके मुख से एक ज़ोरदार चीख़ निकल गई। सामने दृष्टि पड़ते ही उसने देखा एक विशालकाय भीममूर्ति विद्दुत गति से कुंवर साहब की ओर बढ़ती चली आ रही है। यही काला देवतुल्य मनुष्य तो उस दिन रात के समय उसे उस झरने के किनारे स उठा कर यहाँ लाया था, किन्तु उसके साथ एक बाघ था और आज, आज भी तो वह है उसके पीछे साथ ही साथ लगा हुआ कुत्ते की तरह। हे भगवान ! हे महामाया काली ! रक्षा करो, रक्षा करो।

मीना तुरन्त मन्दिर के निकट जा काली की मूर्ति के आगे घुटने टेक कर प्रार्थना करने लगी, "मातेश्वरी ! महामाया काली ! दया करो, दया करो, यदि वास्तव में तुम्हारे मन में लेशमात्र भी दया है तो इस समय इस दीन-हीना, निस्सहाया अबला पर दया करो। उनका कोई अनिष्ट न हो मां ! मातेश्वरी शीघ्र अपने अतुलित पराक्रम से उन्हें उस निर्दय के हाथों से छुड़ाओ। यदि पशुओं और मनुष्यों की भेंट लेते-लेते वास्तव में इतनी कठोर नहीं हो गई हो तो हे मां ! इस समय अवश्य इस अबला की पुकार पर......!"

सहसा 'धायँ-धायँ' का गगन-भेदी गर्जन चतुर्दिग पहाड़ों में एक-बारगी ही प्रतिध्वनित हो उठा। और दूसरी क्षण ही मीना ने घूम कर देखा वह काला देव के समान मनुष्य दो-तीन चक्कर खाकर पहाड़ी के ऊपर से नीचे गिर पड़ा है। "जय माँ

काली ! जय माँ काली !" चिल्लाती हुई मीना हर्षोत्फुल्ल हो झूमती हुई अनेक बार नाच उठी। आह! उसकी ख़ुशी का इस समय कोई ठिकाना ही नहीं था; परन्तु दूसरे क्षण ही उस का हृदय धक् से रह गया जब कि उसने देखा पीछे खड़ा हुआ बाघ झपट कर उन्हीं की ओर आ रहा है। क्रोधोन्मत्त बाघ एक बारगी ही ज़ोर से उछला, पर वाह! ग़ज़ब कर दिया कुंवर साहब ने। किस फुर्ती से पैंतरा काट कर वे उस बड़े पेड़ का आड़ में हो गये कि बाघ का आक्रमण एकदम खाली गया और अपने भार को स्वयं न संभाल सकने के कारण दूसरी क्षण हा वह भी ऊँची पहाड़ी से लुढ़कता हुआ नीचे आ गया। सीधे पहाड़ की पत्थरीली चट्टानों से टकरा कर उसका शरीर भी छिन्न-विछिन्न हो गया। इतनी ऊँचाई से गिरने पर भला कौन बच सकता है ? धन्य हो महामाया काली ! तेरी लीला का पार कौन पा सकता है ! अपनी भेंट तूने किसी रूप में स्वीकार कर ही ली।

चौदहवां परिच्छेद

कुंवर सुरेन्द्रसिंह ने ऊपर से झाँक कर देखा वह पहाड़ी एकदम सीधी क़िले की दीवार के समान खड़ी हुई है। ऊँचाई इतनी अधिक है कि उस पर से उतरना अथवा कूद कर नीचे तक पहुँचना किसी तरह भी सम्भव नहीं है। मीना उस समतल पर कैसे पहुंची? अवश्य ही कोई न कोई गुहा उन पहाड़ों के बीच से बनी होगी नहीं तो और कोई मार्ग ही ऐसा नहीं जिसके द्वारा वहाँ तक पहुँचा जा सके।

उन्होंने देखा, जिस पहाड़ी पर वे इस समय खड़े हुए हैं। वह पास-पड़ोस की तमाम पहाड़ियों से बहुत ऊँची है। उसके इधर-उधर और पीछे भी दूर तक पहाड़ों का ऊँचा सिलसिला फैला हुआ है। प्रातःकाल सूर्योदय होने से पहले ही वे अपने स्थान से चल दिये थे और इस समय तक वे बराबर पहाड़ों के बीच ही इधर-उधर भटकते हुए इस पहाड़ी पर आ पहुँचे थे। उनका घोड़ा भी इस समय उनके साथ नहीं था। शायद कोराल के किनारे ही कहीं बँधा हुआ छोड़ आये थे। पहाड़ी के नीचे पहुंचने के लिये वे चारों ओर घूम-घूम कर रास्ता ढूंढने लगे।

इतने में उन्होंने देखा, नीचे खड़ी हुई मीना उन्हें पुकार रही है। कुंवर साहब ने आवाज़ ऊँची करके पूछा, "तुम किस मार्ग से वहाँ पहुँची हो मीना?"

मीना ने जवाब में कुछ कहा, पर वह महीन आवाज़ कुंवर साहब के पास तक नहीं पहुंच सकी। उन्होंने इशारे से बताया कि वे उसकी आवाज़ को सुन नहीं सके हैं तब उसने अपनी पूरी शक्ति लगा कर जवाब दिया।

"मैं·····आने का मा·········नहीं जानती। आते समय बेहोश थी।"

यथाशक्ति ज़ोर से बोलने पर भी उसका कोई-कोई शब्द कुंवर साहब सुन नहीं सके। तो भी जो कुछ उन्होंने सुना उसीसे अन्दाज़ा लगा लिया कि बेहोश होन के कारण वह यहाँ आने का मार्ग नहीं जानती। अतः अब उन्हें स्वयं ही कोई न कोई तरक़ीब वहां पहुँचने की करनी चाहिए।

बड़े यत्न से देखने पर उन्हें एक तरक़ीब नीचे पहुँचने की सूझ पड़ी। मोटी-मोटी वन्य-लताओं द्वारा ही उन्होंने वहां तक पहुँचने का निश्चय किया। सर्व प्रथम उनकी परीक्षा करके उन्होंने देखा कि वह लताएँ अधिक कमज़ोर नहीं हैं। यदि दो घोड़ों के बीच में बांध कर दोनों को इधर-उधर भगाया जाये तब भी शायद वह लता टूट नहीं सकेगी। अब उन्होंने उसकी जड़ की परीक्षा ली. वहां से भी वह काफ़ी मज़बूत और मोटी थी।

कुंवर साहब ने हर तरह से परीक्षा करके उन्हीं लताओं में से एक को पकड़ कर नीचे खिसकना शुरू कर दिया। बड़ी सावधानी से फिसलते, संभलते हुए वे नीचे को खिसकने लगे।

मीना मन ही मन उनके इस अद्भुत पराक्रम पर भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी। उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी वे उसके लिये इतने साहस का काम भी कर सकेंगे।

इसी प्रकार उस लता की सहायता से उन्होंने आधे से ज्यादा ऊँचाई ख़त्म कर डाली। पथरीली चट्टानों से टकरा कर उनके घुटने और हाथ पांव जगह-जगह से ज़ख़्मी हो गये थे। दो एक गहरी चोटें भी आगई थीं, जिनमें से रक्त-स्राव होने लगा था परन्तु उन सबकी ओर उनका ध्यान भी नहीं था। वे तो जल्दी से जल्दी पहुंचना चाह रहे थे मीना के पास।

समतल पर पहुँचने में अब अधिक विलम्ब नहीं था; केवल दस बारह हाथ के फ़ासले पर ही तो रह गई थी ज़मीन। नीचे को खिसकते हुए सहसा कुंवर साहब को मालूम हुआ जैसे वह लता ही समाप्त हो गई हो। ऊपर से देखने पर उन्हें कुछ मालूम नहीं हो सका था कि वह लता नीचे तक लम्बी नहीं है नहीं तो और भी बहुत सी ऐसी लताएँ थीं जो उनसे कहीं अधिक लम्बी थीं—उन्हीं के सहारे वे नीचे तक पहुँच सकते थे। परन्तु अब क्या किया जावे ? दस-बारह हाथ की बात ही तो रह गई थी।

कूदने के सिवा अब और कोई तरकीब शेष नहीं थी। लता का अन्तिम छोर छोड़ कर वे धड़ाम् से नीचे कूद पड़े। यद्यपि नीचे भी पत्थरीली ज़मीन ही थी तो भी कुंवर साहब के विशेष

सावधानी से कूदने के कारण उन्हें वैसी कोई गहरी चोट नहीं आ पाई और व तुरन्त ही संभल कर खड़े हो गये पास ही थोड़ी दूरी पर भोला और नन्दी की मृत देह पड़ी हुई थी। ऊपर से गिरने पर कुंवर साहब ने देखा था कि वे दोनों कुछ देर तक पड़े-पड़े तड़फ़ते रहे थे किन्तु इस समय दोनों निश्चेष्ट पड़े हुए पूर्णतया शान्त हो चुके थे।

उन्हें देखने के बाद अब वे मीना की ओर घूमे। इस समय तक वह इनके बिलकुल पास ही आचुकी थी। उसकी अस्त-व्यस्त दशा देख कर कुंवर साहब को बहुत दुःख हुआ। शीघ्र ही उसके पास पहुंचते हुए उन्होंने सहानुभूति पूर्ण शब्दों में कहा, "ओह मीना! तुम्हारी यह दशा?"

मीना ने बड़ी सरलता से उत्तर दिया, "मैं बिल्कुल ठीक हूँ किन्तु यह आप की दशा कैसी हो रही है? ओफ़! कितनी चोटें लगी हैं आप को।"

कहते ही कहते चट अपनी साड़ी में से एक टुकड़ा फाड़ कर उनके हाथ पांव और घुटनों की चोट का रक्त पोंछने लगी। कुंवर साहब कुछ न बोल कर चुपचाप खड़े हुए एकटक उसकी ओर देखते रहे मानों उसके काम में बाधा देने का उन्हें तनिक भी साहस नहीं है। मीना ने सब चोटों को ठीक से साफ़ करके उन पर सूखे कपड़े की पट्टी बांध दी और उनका हाथ पकड़े मन्दिर की तरफ को चल दी।

रास्ते में कुंवर साहब ने व्यंग से कहा, "वाह डाक्टर

पन्द्रहवां परिच्छेद

"मेंहदी-कुण्ड के मुहाने पर एक तान्त्रिक साधू रहता है।"

"हाँ, वह कपालिक काली का उपासक है—आजकल कोई भारी सिद्धि प्राप्त करने में लगा हुआ है। रायपुर में उसकी बहुत चर्चा है।"

"बस बस वही, वही तो नर-भक्षी राक्षस हम लोगों की भेंट देना चाहता था। अपने शिष्य के द्वारा उसी ने हम लोगों को यहाँ पकड़ मँगाया है।"

"ओह! कितना भयानक है उसका उद्देश्य, कैसा घृणास्पद है उसका कार्य! ऐसे निर्दय मनुष्यों पर क्या भगवान ख़ुश रहते होंगे?"

"यह भगवान के पुजारी नहीं बल्कि शक्ति के उपासक होते हैं। देवियों को ख़ुश करके उनसे शक्ति प्राप्त कर लेते हैं, फिर असाध्य काम भी उनके लिये साध्य हो जाते हैं—कोई भी असम्भव काम कर डालना उनके लिये सहज हो जाता है और अन्त में यह शक्ति ही उनके नाश का कारण बन जाती है। जब शक्ति का प्रयोग अन्यायपूर्ण एवम् पापपूर्ण कार्यों के करने में होने लगता है तभी वह पाप उनकी शक्ति को नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है।"

"तन्त्रों मन्त्रों की तुम तो विशेष ज्ञाता मालूम देती हो मीना ?"

मीना ने मधुर मुस्कान से उनकी ओर देखते हुए कहा, "जब मैं छोटी थी तब एक साधू हमारे घर आया करता था। पिता जी के साथ उसकी बहुत घनिष्टता थी, घन्टों बैठ कर ऐसी ही बातें किया करता था।"

कुँवर साहब ने पूछा, "अच्छा मीना ! तुम डाक्टर पाल से इतना डरती क्यों हो ? क्या अब भी नहीं बताओगी ?"

"मीना ने मन्द हास्य से उत्तर दिया, "जिस महानुभाव ने मेरे कारण इतना त्याग किया, ऐसे-ऐसे कष्ट उठाकर भी इतने भयानक बन में आना नहीं भूले—क्या अब उन्हीं की बातों को अवहेलना में टाल सकती हूँ। सब बता दूँगी आपको—थोड़ा धैर्य्य से काम लें। पहले आप मेरी बात का जवाब दें।"

"किस बात का ? मुझे तो ध्यान भी नहीं है।" कुँवर साहब ने कहा।

मीना बोली, "मेंहदी-कुण्ड से आप यहाँ कैसे पहुंच गये ?"

'ओ यह बात !" कुँवर साहब ने कहा—"तुम्हें ढूंढ़ता-ढूंढ़ता मैं जब कोराल के पास तक पहुँच गया उस समय थोड़ा जल पीकर उसी के किनारे सुस्ताने लगा था। कुछ देर बाद जब मैं वहाँ से चलने को तैयार हुआ ठीक उसी समय यह भोला अपने उसी बाघ के साथ वहां पहुँच गया और मुझे अपने साथ लिये हुए उस ऊँची पहाड़ी की एक गुहा में ले जाकर बन्द कर

दिया। उसके ख़याल में वह गुहा एक बहुत ही सुरक्षित स्थान था। रात भर मैं उसी में पड़ा रहा। आज सुबह सूर्योदय से पहले ही मैं वहां से उठकर चलते हुए इधर आ निकला।"

"आपका घोड़ा कहां है इस वक़्त ?" मीना ने पूछा।

वे बोले, "वह अब भी शायद कोराल के किनारे ही बँधा हुआ होगा।"

मीना का हृदय उनकी सहानुभूति देख कृतज्ञता से भर गया। वह सोचने लगी कितने उच्च हैं इनके विचार, कैसा उदार है इनका हृदय, मुझे अबला जान कर ही तो ये निकल पड़े मेरी सहायता करने,—नहीं तो क्या पड़ी थी इन्हें। क्या स्वार्थ था इनका जो अकारण ही कूद पड़े इतना दुःख सहने।

मीना को चुप देख कुँवर साहब ने पूछा, "क्या सोच रही हो मीना ? अभी भी वह बात बतलाने का समय नहीं आया है क्या ? बता दो ना !"

कुछ रुक कर अपने को सँभालते हुए वह बोली, "उस समय मुझे डाक्टर पाल का विशेष भय था इसलिये बता नहीं सकी थी; किन्तु अब मैं निर्भय हूँ। बात एक साधारण-सी होने पर भी उस समय परिणाम इसका बड़ा भयानक था मेरे लिये इसीलिये मुझे आपसे बिना बताये हुए ही भागना पड़ा था वहां से।"

"आपको मालूम हो गया होगा कि मैं एक लेडी डाक्टर हूँ। चार महीने के क़रीब हुआ जब कि मेरी बदली उस आर्मी

हस्पताल में की गई थी। अभी कोई बीस-बाईस दिन की ही बात होगी जब कि डाक्टर पाल ने मुझे एक ऐसा हुक्म दिया कि जिसे मैं ही क्या कोई भी हृदय रखने वाली लेडी डाक्टर पूरा नहीं करना चाहेगी।"

कुँवर साहब ने उत्सुकता से पूछा, "क्या हुक्म दिया था उन्होंने ?"

दुःखित स्वर में उसने जवाब दिया, "इस बच्चे को मार डालने की आज्ञा थी उनकी। क्योंकि यह उन्हीं के गुप्त-प्रेम का जागृत परमाण है।"

कुँवर साहब के सामने का पहाड़ यदि उनकी आंखों के सामने ही उड़ता हुआ नभ-मण्डल में चक्कर खाने लगता तो भी शायद उन्हें इतना आश्चर्य नहीं होता जितना कि मीना के इस वाक्य ने उन्हें विस्मित कर दिया।

विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देखते हुए वे तुरन्त पूछ बैठे, "क्या कहा ? यह बच्चा डाक्टर पाल के गुप्त-प्रेम का जागृत परमाण है ?"

"जी !" उसी सरलता से मीना ने कहना शुरू किया, "डेढ़ महीने की बात है जब कि एक दिन अकस्मात ही उनकी आज्ञा से मुझे एक नर्स के साथ शिवपुर जाना पड़ा। बीच में मोटर ख़राब हो जाने के कारण हमें वहां पहुंचने में ज़रा देर हो गई—फिर भी बड़ी सावधानी से मैंने इस बच्चे को बचा लिया परन्तु दुर्भाग्य से इसकी मां को मैं बचा न सकी, उसकी

दशा बहुत ख़राब हो चुकी थी। मरने से पहले उसने मुझे तमाम बातें बताईं। उसने स्वयं अपने मुख से रोते-रोते कहा—बहन! मैं यहां अकेली रहती हूँ, पहले एक नर्स थी। इसी डाक्टर पाल के आधीन काम किया करती थी। उन्नति का लोभ दे-दे कर उसने मुझे फँसा लिया और अन्त में इस उन्नति के लोभ ने मुझे कहीं का भी न रक्खा। जब डाक्टर को मालूम हुआ कि मैं गर्भवती हो चुकी हूँ तो वहां से हटा मेरे रहने का प्रबन्ध यहां कर दिया। बहन! मैं तो मर ही रही हूँ पर तुम इस बच्चे की रक्षा करना—उस निर्दय के हाथ में पड़ते ही…"

"कहते-कहते ही उसकी मृत्यु हो गई। उसी क्षण मैंने देखा, डाक्टर पाल झपट कर वहाँ आये और इस बच्चे को मांगने लगे। परन्तु उनके आने से पहले ही मैंने उसे अपनी नर्स के साथ एक दूसरी जगह भेज दिया था; वह उसे लेकर तुरन्त ही पास के किसी गांव में चली गई थी। बच्चे को न पाकर ही डाक्टर मेरा परम शत्रु बन बैठा और उसी दिन से मुझे डराना-धमकाना और तंग करना शुरु कर दिया। रायपुर वापस जाने पर उसका अत्याचार और भी बढ़ गया और अन्त में एक दिन चुपचाप ही मैं वहां से भाग खड़ी हुई। अवकाश मिलते ही उस नर्स से इस बच्चे को लेकर मैं भागी जा रही थी कि अकस्मात उस रायपुर के जंगल में उस दिन आपसे भेंट हो गई। बाद की सब बातें तो आप जानते ही हैं।'

सोलहवां परिच्छेद

कुंवर साहब ने शान्त भाव से सब कुछ सुना फिर एक निःश्वास छोड़कर बोले, "ओफ़! मनुष्य को पहचानना भी आजकल कितना कठिन हो गया है। डाक्टर पाल, जैसा देखने में सज्जन मालूम होता है उससे कहीं अधिक भयानकता उसके रोम-रोम में समाई हुई है। पाप करके मनुष्य उसे छिपाने के लिये फिर अनेक पाप किया करता है और यह अभ्यास उसका दिन पर दिन बढ़ता ही चला जाता है। यही दशा डाक्टर पाल की भी हुई है।"

मीना ने कहा, "इतना ही नहीं—भेद खुल जाने के डर से वे उस बेचारी ग़रीब नर्स के पीछे भी बुरी तरह से लगे हुए हैं। मेरे भाग आने के समय से ही वह भी अपनी जान छिपा कर भागती फिर रही है। डाक्टर के डर से काम पर भी नहीं जा सकती। न जाने कहां होगी इस समय।"

कुंवर साहब क्षण भर तक चुपचाप बैठे हुए कुछ सोचते रहे। फिर सहसा अपने जगह से उठ कर बोले, अब हम लोगों को तुरन्त यहां से चल देना चाहिये।"

मीना ने उत्सुकता से पूछा, "क्यों ? कोई खतरे की बात है क्या ?"

उन्होंने कहा, "अवश्य ही अभी हम ख़तरे से दूर नहीं हैं।

हो सकता है देरी हो जाने पर भोला का गुरु उसे ढूँढ़ता हुआ यहां तक पहुँच जाये।"

मीना ने लापरवाही से कहा, "तब डर की क्या बात है? आपकी पिस्तौल तो आपके साथ है न? एक गोली में ही उसका भी अंत हो जायेगा।"

'यूँ किसी पर गोली चलाते रहना न्याय के विरुद्ध है, मीना! ऐसा करने से तो हमारा मानव समाज हा छिन्न-विछिन्न हो जायेगा।"

मीना ने देखा, कुंवर साहब के मन में और गुणों के साथ-साथ दया-धर्म भी विशेष मात्रा में मौजूद है। कुछ मुस्कुराते हुए उसने पूछा, "निकलनेके लिये कोई रास्ता भी देखा आपने? या उन वन्य लताओं को पकड़ कर ही चढ़ने का इरादा है, पर मुझ से तो यह हो नहीं सकेगा।"

कुंवर साहब बोले, "हां, बच्चा लेकर लताओं के सहारे ऊपर तक चढ़ना कठिन ही नहीं प्रत्युत एक प्रकार से असंभव-स ही है।"

"तब फिर क्या करने का विचार है?" प्रश्न सूचक दृष्टि से मीना ने उन्हें देखा।"

कुंवर साहब इस समय बड़े ग़ौर से उन बड़ी झड़ियों को देख रहे थे जो उस ओर बग़ल की पहाड़ी के नीचे झुण्ड की झुण्ड खड़ी हुई थीं। एक ख़रगोश भागता हुआ कुछ देर हुए उनकी जड़ों में घुसा था। उसके घुसने से वहां के पत्ते इधर-उधर हं

गये थे। उसी ख़ाली जगह से उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ मानों कोई गोलाकार छिद्र-सा उस पहाड़ी के भीतर है। अवश्य ही वह किसी गुहा का द्वार रहा होगा। क्यों न जाकर उसी को देख आयें।

अब वे चलने के लिये पूर्णतया उद्यत होकर मीना की ओर घूमे। परन्तु यह क्या? मीना उनके पास नहीं थी—वे धक से रह गये। दूसरे ही क्षण उस मन्दिर की ओर उनकी दृष्टि गई और तब उन्होंने देखा,—द्वार पर खड़ी हुई मीना बड़ी श्रद्धा से मां काली की प्रार्थना कर रही है। उसकी इस धर्म्म-निष्टा पर कुंवर साहब सन्तुष्ट होकर मन ही मन मुस्करा पड़े और स्वयं भी उसीके पास जा कर बड़ी भक्ति से हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

इच्छानुसार मां काली की आराधना करने के बाद वे दोनों वहां से घूमे और मृगछाला पर पड़े हुए बच्चे को उठा कर चल दिये वहां से। झाड़ी के पास आकर कुंवर साहब ने देखा वास्तव में उनके अनुमान के अनुसार ही उस पहाड़ी की तली में एक बड़ा-सा गोलाकार छिद्र बना हुआ है। यद्यपि भीतर उसके घोर अन्धकार छाया हुआ है तदपि खतरे की वैसी कोई बात उन्हें मालूम नहीं दी; अतः बिना किसी विलम्ब के सबसे पहले वे स्वयं घुसे—पीछे-पीछे मीना ने भी प्रवेश किया। बच्चा इस समय कुँवर साहब ने अपने गोद में ले लिया था।

भीतर से गुहा यद्यपि इतनी सङ्कीर्ण थी कि उन्हें झुके-झुके

ही चलना पड़ रहा था तदपि मैली गन्दी अथवा कूड़ा कर्कट से भरी हुई न होने के कारण चलने में विशेष कोई रुकावट नहीं हो रही थी। झुके-झुके चलते हुए दोनों की कमर और गर्दन भी दुखने लगी और अन्त में ऊब कर मीना को कहना ही पड़ा—"हे भगवन ! यह गुहा है या जीवन मरण के प्रश्न को हल करने की पहेली।" उत्तर में कुँवर साहब केवल हँस भर दिये और कहते भी क्या बेचारे अलबत्ता छोटे-छोटे पतंगों से बचने के लिये मुख बन्द करने को अवश्य ही कहना पड़ा उन्हें। फिर वे दोनों चुप-चाप चलते रहे।

आधा घन्टा तक लगातार चलते रहने के बाद अन्त में उन्हें कुछ उजाला-सा दिखाई देने लगा उस गुहा में। अब कुँवर साहब के मुख से निकला, "शुक्र है भाई ! यह काली सुरग खत्म तो हुई किसी तरह से।"

मीना ने जल्दी-जल्दी चलते हुए कहा, "चले चलिये फुर्ती के साथ। मेरी तो कमर भी बुरी तरह से दुखने लगी है। मालूम नहीं किस मूर्ख ने ऐसी तंग गुहा बनाई है चलने के लिये। कौन आता होगा यहां ?"

"आने वाले आते ही होंगे।" कहते हुए कुँवर साहब गुहा के बाहर निकल गये और खुली हवा में जाकर एक अँगड़ाई ली। इतने में मीना भी अपनी कमर सीधी करती हुई उनके पास पहुँच गई और हँसते हुए बोली,

"कहिये कुँवर साहब !" हँसते हुए उन्होंने कहा, "कमर

और गर्दन तो एकदम बेकार-सी हो गई जान पड़ती है। बहुत तंग है यह रास्ता।"

मीना ने चारों ओर दृष्टि घुमा कर देखते हुए कहा, "जान पड़ता है हम लोग कौशलगढ़ से आगे निकल आये हैं। वह देखिये, दुर्ग की ऊँची-ऊँची दीवारें दूर उस पहाड़ी के पीछे दिखाई दे रही हैं।"

कुंवर साहब ने ध्यान से दूर-दूर तक नज़र दौड़ा कर देखा, वास्तव में वह गुहा मेंहदी-कुण्ड की ओर न जाकर दूसरी ओर ही उससे कहीं दूर एक खाई के किनारे निकल आई थी। उन्होंने यह भी देखा कि सामने से एक कच्चा रास्ता, जिस पर बैलगाड़ियों की लीकें पड़ी हुई थीं जाम नामक गाँव को होता हुआ मालवा राज्य की तरफ़ चला गया है। यह स्थान उन्हें कुछ निरापद-सा जान पड़ा। भयानक जंगल की सीमा उस स्थान से पीछे रह गइ थी।

"अच्छा मीना! अब तुम्हें थोड़ी देर तक यहां अकेली ही रहना पड़ेगा क्योंकि मेरा घोड़ा यहाँ से थोड़ी दूर पर कोराल के किनारे बँधा हुआ है, उसे भी ले आऊँ।"

मीना की स्वीकृति पाकर कुवर साहब तुरन्त वहाँ से घोड़ा लाने चल दिये।

सत्रहवां परिच्छेद

कुंवर साहब के चले जाने पर मीना उसी घाटी के किनारे एक चट्टान पर बैठ कर उनका इन्तज़ार करने लगी। अब भय की तो विशेष कोई बात थी ही नहीं अतएव निश्चिन्त होकर ज़रा कमर सीधी करने के ख्याल से वहीं चट्टान पर बच्चे की बग़ल में ही लेट रही। थकावट के मारे उसका बदन चूर-चूर हो रहा था, कई दिन से ठीक से सो भी नहीं पाई थी इसलिये ठन्डी-ठन्डी ताज़ी हवा लगते ही उसे झपकी आ गई और दूसरे क्षण ही वह मीठी नींद में खर्राटे भरने लगी। बेफ़िकरी में नींद का नशा भी बहुत तेज़ होता है।

न मालूम कितनी देर के बाद उसकी आँख खुली होगी। हठात् ही हड़बड़ा कर उठ बैठी—इधर-उधर नज़र दौड़ा कर देखा, कुंवर साहब अभी तक भी वापस नहीं आये थे। फिर घूम कर उसकी नज़र बच्चे पर पड़ी—आह! यह क्या? बच्चा भी तो वहां नहीं था। हे भगवान! यह दूसरी मुसीबत कहाँ से टपक पड़ी? इधर-उधर घूम-घूम कर देखा—कहीं भी उस बच्चे का पता न था। अब क्या करे बेचारी मीना? कहां जाये उसे ढूंढ़ने को? यदि जाये भी तो पीछे कुंवर साहब कहां ढूंढ़ते फिरेंगे उसे!

क्षण भर बाद ही उसे एक तरकीब सूझ पड़ी। छोटी छोटी अनेक रंग की वहां पथरियां पड़ी हुई थीं। उन्हीं में से एक गेरुआ रंग की नरम सी पथरी उठा कर एक बड़े श्वेत पत्थर पर उसने जल्दी-जल्दी लिखा—

"बच्चा कोई उठा ले गया है—उसी को ढूंढ़ने पश्चिम की ओर जा रही हूँ। इस समय इस पत्थर की परछाईं इस जगह है; मैं चिन्ह लगाये दे रही हूँ। आप जितनी देर में आवेंगे इस परछाईं से आपको समय का अन्दाज़ा भली भांति लग सकेगा। यदि हो सके तो शीघ्र पश्चिम-दिशा को चल दीजियेगा—कहीं न कहीं मैं अवश्य मिल जाऊँगी—मीना।"

इतना लिखकर उसने उस पत्थर को बड़ी चट्टान पर रख कर परछाईं का चिन्ह लगा दिया और तुरन्त ही वहां से पश्चिम की तरफ़ को चल दी। कच्चा रास्ता पहाड़ी के ऊपर से गया था, उसमें बैलगाड़ी चलने से दो मोटी लीकों के चिन्ह स्पष्ट पड़ गये थे। उसी रास्ते पर से मीना झपटी चली जा रही थी। पूर्व की ओर न जा कर वह पश्चिम की तरफ़ को ही क्यों जा रही थी? इसका भी एक कारण था। जिस समय वह नींद से हड़बड़ा कर उठी थी उसी समय उसने पश्चिम की तरफ़ को एक काली-सी छाया जल्दी-जल्दी भागती हुई देखी थी। उसी को देख कर उसे सन्देह हो गया था और इसीलिये वह भी स्वयं उधर को ही झपटने लगी।

कोई आधा मील के लगभग चलने पर उसे सड़क के

किनारे की झाड़ियों के पीछे किसी के फुसफुसाने की आवाज़ सुनाई दी। वह खड़ी होकर सुनने लगी--उसे लगा मानों कुछ लोग वहां बैठे हुए कोई गुप्त परामर्श कर रहे हैं। उसने ध्यान से उनकी बातें सुनने की चेष्टा की, परन्तु उसकी समझ में उनकी भाषा ही नहीं आई। अब उसे क्या करना चाहिये—यही सोच रही थी वह कि इतने में उसे किसी बच्चे के ज़ोर से रोने की आवाज़ सुनाई दी। उसने तुरन्त पहचान लिया—यह उसी बच्चे की आवाज़ थी। अब वह वहां रुकी न रह सकी--तुरन्त भागती हुई उन झाड़ियों के पीछे पहुंची और उस बच्ची को देखने के लिये विशेष उत्सुक हो उठी।

झाड़ियों के पीछे ही बड़े-बड़े पत्थरों पर चार पांच काली-काली औरतें बैठी थीं। मैले-कुचैले वस्त्रों से शरीर का थोड़ा सा भाग ढांपे, अर्ध-नग्नावस्था में वे स्त्रियाँ लंका की राक्षसियों के समान ही दिखाई देती थीं। उन्हीं में से एक की गोद में इस समय वह बच्चा पड़ा हुआ था। बच्चे को उसकी गोद में पड़े हुए देखते ही मीना के तन-बदन में आग-सी लग गई। झपटती हुई उसके पास पहुंची और क्रोध में कांपती हुई बोली, "डायन! चुड़ैल! राक्षसी! दे मेरे बच्चे को—नहीं तो अभी पत्थर फेंक कर तेरा सिर फोड़ डालूंगी।"

वे सभी स्त्रियाँ अवाक् हो उसकी ओर देखती ही रह गईं। जान पड़ता था मीना की कोई भी बात उन की समझ में नहीं आई है। मीना ने जब देखा कि वे स्त्रियाँ उसकी बात का कोई

उत्तर ही नहीं देती हैं तो क्रोध में और भी पागल-सी हो उठी और झपट कर उसने उस औरत के बालों को पकड़ कर जोर से झकझोर दिया। अब वह औरतें भी चुपचाप बैठी न रह सकीं सब की सब उठ कर खड़ी हो गईं—जान पड़ा जैसे एक साथ ही सब मिलकर उस पर आक्रमण करना चाहती हैं। उनकी लाल आँखें देख मीना भी डर गई।

किन्तु उसी क्षण मीना ने देखा कि उस बच्चे वाली स्त्री ने उनसे कुछ कहा।जिसे वह स्वयं तो कुछ समझ नहीं सकी परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि वे सब स्त्रियाँ एकदम से नम्र पड़ गईं और फुस-फुस करके आपस में न मालूम कैसी-कैसी बातें करने लगीं। फिर एक स्त्री ने उस बच्चे की तरफ़ इशारा करके टूटी-फूटी भाषा में मीना से पूछा,—"ए—तुमारा ?"

मीना ने उसका मतलब समझ कर जवाब दिया, "हां, यह हमारा बच्चा है। मैं सो रही थी—यह औरत इसे कहां से उठा लाई है।"

उसकी बात उन लोगों की समझ में आई या नहीं आई, यह तो भगवान ही जानें परन्तु उसके उत्तर में उन स्त्रियों में से एक ने उसकी तरफ़ इशारा करते हुए कहा, "इसका बाचा नाईं। ए ईसका राखो।"

क्या मतलब ? उस औरत का कोई बच्चा नहीं है इसलिये वह इस बच्चे को रखना चाहती है। मीना गुस्से में हुंकार उठी, "हुँ...ह ! पगली कहीं की।" यदि उसकी कोई सन्तान नहीं है

तो इसके लिये वह तो ज़िम्मेदार नहीं। वह जाने या उसका दुर्भाग्य! मांन। क्यों अपने बच्चे को भला उसे देने लगी। बड़ी विचित्र हैं ये स्त्रियाँ तो। विद्युत गति से झपट कर उसने अपने बच्चे को उस से छीन लिया और भागी वहां से पीछे को इतनी तेज़, जितना तेज़ कि वह भाग सकती थी।

ग़ज़ब की फुर्ती से काम लिया इस वक्त मीना ने। उन औरतों से कुछ भी करते-धरते बन न पड़ा; परन्तु दूसरे क्षण ही मीना को मालूम हो गया कि वे स्त्रियाँ भी पीछा किये हुए चली आ रही हैं। वह और तेज़ भागी, ख़ूब भागी, बराबर भागती ही रही जितना कि वह भाग सकती थी। पीछा करने वाली औरतों की चाल उससे तेज़ थी क्योंकि वे सब खाली थीं और मीना के पास बच्चा था। भागते-भागते वह थक गई और अन्त में एक जगह ठोकर खाकर गिर भी पड़ी बेहोशी की सी हालत में उसी क्षण घोड़े की टापों की आवाज़ से तमाम जंगल प्रतिध्वनित हो उठा। सामने ही एक घोड़ा तेज़ी से भागता चला आरहा था। उसे देखते ही जंगली औरतें एक ओर भाग कर अदृश्य हो गईं।

अठारहवां परिच्छेद

मीना बेहोश हो चुकी थी। होश में आने पर जब उसकी आँख खुली तो उसने देखा कि उसका सिर किसी की गोद में रक्खा हुआ है और किसी की बड़ी-बड़ी अंगुलियाँ धीरे-धीरे उसके सिर के बालों में घूम रहीं हैं। आंखों को थोड़ा और उघार कर देखा तो उसे मालूम हो गया कि वह इस समय किसी और की नहीं बल्कि स्वयं कुंवर सुरेन्द्रसिंह की ही गोद में पड़ी हुई है। आह! इस समय उसे जितना आनन्द हो रहा था इतना शायद जीवन में कभी भी उसे प्राप्त नहीं हुआ होगा। आनन्दविभोर हो उसने पुनः जल्दी से आँखें बन्द कर लीं। वह चाहती थी थोड़ी देर और इस स्वर्गीय आनन्द का उपभोग करना। अच्छा हुआ उसके सौभाग्य से कुंवर साहब ने उसकी आँखों को खुलते हुए नहीं देखा नहीं तो अवश्य ही कुछ न कुछ पूछ बैठते उससे। और तब इस तरह चुपचाप पड़े रहना इसके लिये किसी तरह भी संभव न होता।

किन्तु कुंवर साहब के साथ यह चोरी का व्यवहार उसे स्वयं पसन्द नहीं आया और वह तुरन्त ही चुपचाप उठ कर उनके पास ही बैठ गई। लज्जा से उसका मुख इस समय भी रक्तवर्ण हो रहा था, जिससे उसकी सुन्दरता और भी द्विगुणित

हो उठी थी। शरीर में रह-रह कर कपकपी-सी आ जाती थी और हृदय उछलने लगा था।

इतने में ही कुंवर साहब पूछ बैठे उससे, "कैसी तबियत है?"

"अब तो ठीक है बिल्कुल।" गर्दन झुकाये हुए ही उसने जवाब दिया।

"क्या हो गया था तुम्हें?" पुनः पूछा उन्हों ने।

"आप के जाने के बाद मैं वहीं बैठे-बैठे सो गई थी। आंख खुलने पर देखा कि यह बच्चा वहां नहीं था। आप को एक पत्थर पर जल्दी-जल्दी कुछ संकेत लिख कर मैं तुरन्त वहां से इसे ढूँढ़ने के लिये चल दी और अन्त में यहाँ से थोड़ी दूर पर कुछ औरतों के पास इसे पाकर बड़ी मुश्किल से उनके हाथों से छीन कर इधर भागी चली आरही थी कि थक कर यहाँ गिर पड़ी और बेहोश हो गई।"

कुंवर साहब ने पूछा, "कौन थीं वे लोग?"

उसने उत्तर दिया, "जान पड़ता था भील जाति की स्त्रियां थीं। उनमें से एक स्त्री की कोई सन्तान नहीं थी वही उठा ले गई थी इसे।"

"ओह! कैसा आतङ्क-जनक है यह बन और पहाड़। यदि उस पत्थर पर तुम लिख कर न आतीं तो मैं ठीक समय पर पहुंच कर कभी भी तुम्हें इस विपद् से बचा न सकता। पत्थर की परछाईं देखने से मालूम हुआ कि तुम्हें इधर आये हुए

आधा घन्टा से अधिक नहीं हुआ है और तभी मैं भी इस तरफ़ को चल दिया।"

"जान पड़ता है वे स्त्रियाँ आपके घोड़े को देखते ही भागी थी यहाँ से?"

"हां मैंने दूर से ही कुछ औरतों को तुम्हारे पीछे भागते हुए देखा था, लेकिन मेरे घोड़े की आवाज़ सुनते ही फिर वह ठहर नहीं सकीं और तुरन्त ही भग गईं यहाँ से। तुम्हारे पास से चल कर जब मैं मेहन्दी-कुन्ड के पास पहुंचा तो वहीं सौभाग्य से मेरा यह घोड़ा भी बंधा हुआ मिल गया और मैं तुरन्त ही इसे खोलकर वहां से चल दिया। वहां से वापस आने में मुझे एक घन्टा से ज्यादा नहीं लगा होगा।"

वह बोली, "अब हमें यहां से चलकर जल्दी ही किसी जलाशय के पास पहुँचना चाहिये क्योंकि भूख और प्यास बड़े ज़ोर की लगी हुई है।"

उन्होंने कहा, "कोराल का झरना यहां से अधिक दूर नहीं है। चलो, वहीं चलकर थोड़ा जलपान किया जाये। खाने का सामान मेरे पास मौजूद है।"

उनका पिछला वाक्य सुन कर मीना को आश्चर्य हुआ क्योंकि भोजन की सामग्री वहां उनके पास कहाँ से आई। जिस समय पहले उसने उन्हें देखा था उस समय उनके पास कोई चीज़ ऐसी नहीं थी जिसमें भोजन की सामग्री होने का अनुमान लगाया जा सकता है, किन्तु इस बार उसने देखा कुँवर साहब

की पीठ पर एक नहीं दो-दो चीजें लटकी हुई थीं। एक थर्मस और दूसरा वही सूखे फलों का थैला।

दोनों चीजों को सतृष्ण दृष्टि से देख कर मीना एक प्रकार से व्यग्र-सी हो उठी। कुंवर साहब के नेत्रों से उसके मन का भाव छिपा नहीं रह सका। उन्होंने मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए पूछा, "क्यों, भूख अधिक सता रही है क्या ?"

वह बोली, "भूख की तो इतनी चिन्ता नहीं है, परन्तु प्यास अधिक लगी हुई है।"

दुखित स्वर में उन्होंने कहा, "अफ़सोस ! थर्मस इस वक़्त बिलकुल सूखा पड़ा हुआ है। आते समय ये दोनों चीज़ें मैं अपने घोड़े की गर्दन में ही लटका आया था, इस समय भी यह चीज़ें मुझे वहीं लटकी हुई मिलीं। वापस आने की जल्दी में कोराल से थर्मस में पानी भरना ही भूल गया—कितनी सख्त ग़लती हुई।"

मीना बोली, "कोई हर्ज नहीं। अब चल कर किसी झरने के किनारे पहुंचना चाहिए।" इतना कह कर वह बच्चे को उठाने लगी परन्तु कुंवर साहब ने उसे अधिक दुर्बल देखकर बच्चे को स्वयं ले लिया और चल दिया वहाँ से।

दोनों यदि चाहते तो उस बच्चे को लिये हुए भी घोड़े पर चढ़ सकते थे, किन्तु मीना की अधिक दुर्बलता के कारण कुंवर साहब ने ऐसा करना उचित नहीं समझा और फिर झरना में

तो वहां से अधिक दूर नहीं था। बच्चे को लेकर बार-बार घोड़े की पीठ पर से उतरना-चढ़ना यह भी तो एक मुसीबत ही है।

बीस-पचीस मिनट के बाद ही कोई एक मील के क़रीब ही वह झरना था। उसके पास पहुंच कर कुंवर साहब और मीना ने जल्दी जल्दी हाथ-मुख धोया और तब थैले में से सूखे फल और मेवे निकाल कर कुंवर साहब ने मीना को दिये और स्वयं भी लिये। दोनों ने प्रेमपूर्वक खाकर क्षुधा-निवारण किया और फिर भर पेट पानी पीकर दोनों के दोनों स्वस्थ हो वहीं बैठ कर आराम करने लगे।

वह कच्ची सड़क जिस पर से हो कर वे लोग यहां तक पहुंचे थे, इस झरने के पास आकर खत्म हो गई थी; लेकिन झरने के दूसरी पार से पुनः वही सड़क आगे तक जाती हुई दिखाई दे रही थी। जान पड़ता था भील लोगों ने इस झरने को पार करने के लिये कोई कच्चा पुल बनाया हुआ था, जो शायद इस बरसात में झरने के प्रवाह के साथ टूट कर बह गया था और अब वहां केवल झरने का तीव्र प्रवाह ही इधर से उधर तक उछलता हुआ दिखाई दे रहा था।

वर्षा ऋतु खत्म हो चुकी थी और अब शरद का आरंभ था। शिशिर सिक्त वायु का झोंका आ-आकर शरीर में एक रोमांच-सा पैदा कर देता था। ऐसे हो समय कुंवर साहब मीना के साथ बैठे हुए सन्ध्या होने से पूर्व ही उस चौड़े झरने के तीव्र प्रवाह को पार कर जाने की सोच में डूबे हुए थे। पास में घोड़ा

होने के कारण कुछ निश्चिंत थे परन्तु उस पर बैठकर झरना पार करना असम्भव ही था। उसी समय हठात भय से चीख़ कर मीना ज़ोर से उनकी गोद में गिर पड़ी। इस आकस्मिक दुर्घटना का कारण कुंवर साहब कुछ भी न समझ सके।

उन्नीसवां परिच्छेद

मीना के इस आकस्मिक परिवर्तन को देख कर कुंवर साहब को कम आश्चर्य नहीं हुआ। हाथ से संभालते हुए उन्होंने उससे पूछा, "क्या हुआ मीना ?"

शिकारी के डर से घबराई हुई हरिणी की तरह सहमी हुई मीना के मुख से कोई भी शब्द नहीं निकल सका। केवल संकेत से ही एक ओर कुछ उन्हें दिखाने की चेष्टा की, परन्तु कुंवर साहब को कुछ भी विशेष बात नहीं मालूम हो सकी उधर। तब मीना ने साहस बटोर कर कहा, "वही त्रिशूलधारी साधू !"

"कौन ? भोला का गुरु !" कुंवर साहब ने जल्दी से पूछा।

"हाँ !' कह कर ही मीना फिर उधर को ही देखने लगी।

कुंवर साहब ने भी देखा दानव-तुल्य वह कपालिक हाथ में त्रिशूल उठाये इसी तरफ़ को झपटा चला आरहा है। कच्चे रास्ते से होकर नहीं बल्कि पहाड़ी पर बनी हुई पगडण्डी के रास्ते से वह चला आरहा है; केवल एक ही पहाड़ी बीच में थी। उसे पार करते ही वह इनके पास आ जायेगा अतः अधिक से अधिक बीस मिनट का अवकाश उनके पास था, इसी में उन्हें उस झरने के पार पहुँच जाना चाहिये। विलम्ब होता देख मीना चिल्ला उठी—

"चलिये, चलिये, शीघ्र उस पार पहुंच कर अपनी जान बचाइये।"

"घबराओ नहीं मीना! मेरी पिस्तौल की गोलियां अभी खत्म नहीं हुई हैं।"

"क्या इन गोलियों का उपयोग आप कपालिक पर भी करना चाहते हैं? ऐसा नहीं हो सकता। कुछ भी हो वह फिर भी एक कपालिक है इसे आप भूलियेगा नहीं।"

"अच्छा तो चलो।' कहते हुए उन्होंने पास ही पड़ा हुआ एक लकड़ी का बड़ा सा तख्ता ढकेल कर पानी में कर दिया। टूटे हुए कच्चे पुलकी बहुत सी लकड़ियाँ जिधर-तिधर बिखरी पड़ी थीं, उन्हीं का बड़ी फुर्ती से जोड़ कर एक छोटा सा बेड़ा तैयार कर लिया फिर स्वयं बैठ कर उसकी मजबूती का अन्दाजा लिया और जब उन्हें अच्छी तरह इतमीनान हो गया तो मीना को बच्चे के सहित उसके ऊपर बैठा दिया। स्वयं भी जल्दी-जल्दी कपड़े उतार कर एक गठरी बना ली और उसे मीना के हाथ में थमा कर पानी में उतर गये।

यह सब काम बहुत जल्दी ही दस बारह मिनट के भीतर ही हो गया। त्रिशूलधारी साधू अब तक उनके बिल्कुल निकट पहुंच चुका था, यदि पांच मिनट की और देरी होती तो वे लोग कभी भी उसके मजबूत हाथों से अपने को छुड़ा न सकते और तब शायद कुंवर साहब को अवश्य ही अपनी पिस्तौल का सहारा लेना पड़ता; किन्तु ऐसा न होने से पहले ही कुंवर साहब

एक हाथ से अपने घोड़े की बागडोर पकड़े-पकड़े दूसरे हाथ से बस छोटे बेड़े को ढकेलते हुए झरने के तीव्र प्रवाह में तैरने लगे।

घूमते, उछलते और लहराते हुए बड़ी कठिनाई से अन्त में वे लोग उस पार किनारे से लग ही गये। पार पहुँच कर कुंवर साहब ने शरीर को बिना पोंछे ही जल्दी-जल्दी अपने कपड़ों को पहना और तब तक उन्होंने देखा वह भीषण आकृति का कपालिक झरने के उस पार खड़ा हुआ बड़ी-बड़ी रक्ताक्त आंखों से इनकी ओर देख रहा है। कुंवर साहब को अपनी ओर ताकते देख उसने चिल्ला कर पुकारा, "जीवन प्यारा है तो भागने की चेष्टा मत करना।" उत्तर में कुंवर साहब हंस भर दिये।

यद्यपि झरने के इस पार वे लोग बहुत अंश में निरापद हो चुके थे, किन्तु फिर भी वह स्थान अभी एकदम ही ख़तरे से ख़ाली नहीं था अतः उन्होंने अधिक वहां ठहरना उचित नहीं समझा; तभी उन्होंने देखा कपालिक झरने में से तैर कर उनके पास आने की चेष्टा कर रहा है। घोड़ा भी चूंकि तैर कर इनके साथ आया था इसलिये वह भी भीग गया था। बड़ी फुर्ती से उसका शरीर पोंछ कर कुंवर साहब ने मीना और बच्चे को उसकी पीठ पर बैठा दिया और फिर स्वयं भी कूद कर बैठ गये और चल दिये वहां से।

अब उनके लिये भय की वैसी कोई बात शेष नहीं रह गई थी। चार या पांच मील तक बराबर चलते रहने पर पहाड़ों का सिलसिला ख़त्म हो गया और अब वे लोग समतल पर चलते

आ रहे थे। जंगली घास और झाड़ियाँ भी पीछे छूट चुकी थीं। सामने एक बड़ा मैदान था। आधा घन्टा बाद वह मैदान भी खत्म हो गया और अब वे लोग आम और अमरूद के बड़े बग़ीचे के बीच से होकर जारहे थे। बाग़ बहुत बड़ा और घना था; दिन में यूँ ही अँधेरा रहता था तिस पर सन्ध्या का अन्धकार तो और भी घनीभूत हो उठा था। जैसे-तैसे करके वे लोग उसके पार पहुँचे।

बाग़ ख़त्म होने पर उन्होंने देखा सामने एक गाँव था। घर-घर में प्रदीप जल रहे थे—चतुर्दिक निस्तब्धता-सी छाई हुई एक अनोखा दृश्य उपस्थित कर रही थी। कुंवर साहब और मीना, गाँव की इस एकान्तता पर मुग्ध हो गये। दोनों चुपचाप चले जा रहे थे—सहसा एक बड़े से झोंपड़े के दर्वाज़े पर खड़ी हुई एक स्त्री ने पुकार कर आवाज़ दी; "बीबी जी! बीबी जी!"

घोड़ा आगे निकल गया था। घूम कर दोनों ने देखा और तब मीना ने उस स्त्री को पहचान कर कहा, "अरे, श्यामा है क्या? हाँ वही तो है।"

कुंवर साहब ने उत्सुकता से पूछा, "कौन श्यामा?"

"वही नर्स, जो मेरे साथ शिवपुर गई थी। बेचारी डाक्टर के डर से अभी भी इस गाँव में छिप कर रहती है।"

इतने में श्यामा ने आकर मीना की गोद से वह बच्चा ले लिया और उसे प्यार करने लगी। कुंवर साहब और मीना भी

उतर पड़े और श्यामा उन सब को लिये हुए अपने झोंपड़े में घुस गई। घोड़ा भी एक खूंटे से बाँध दिया गया और उसके चरने के लिये पर्याप्त मात्रा में घास भी छोड़ दी गई।

झोंपड़े के भीतर विशेष सजावट न होने पर भी सफ़ाई भली भांति की हुई थी। दो चारपाई और दो-तीन चटाई भी पड़ी हुई थीं। चारपाइ पर न बैठकर दोनों ने चटाई पर बैठना ही अधिक पसन्द किया। उन्हें बैठाकर श्यामा खाना बनाने का प्रवन्ध करने लगी। आलू का शाक और परांठे बनाने में भला उसे क्या देर लगती ? चटपट बनाकर बड़े प्रेम से दोनों को खिलाया; फिर कहीं से दूध लाकर गर्म किया और स्वयं ही बच्चे को पिलाकर बड़े आराम से एक बिस्तरे पर सुला दिया।

काम करते-करते ही उसने मीना की सारी दुःख भरी कहानी सुनी और स्वयं भी बताया कि वह तब से डाक्टर पाल के डर से वहाँ न जाकर इसी गाँव में रहती है।

इसके बाद निश्चय हुआ कि दूसरे दिन सुबह ही सब राय-पुर चलेंगे। और तब सबने बड़े आराम से सुख की नींद सोकर सारी रात उसी गांव में बिताई। आज की रात मीना के लिये बहुत सुखकर थी।

दूसरे दिन सुबह ही उठकर कुंवर साहब, मीना और श्यामा नित्यक्रिया से निवृत्त हो बच्चे को साथ लेकर रायपुर की तरफ़ को चल दिये और एक घन्टा के भीतर ही सबको लिये हुए कुंवर साहब ने अपनी आलीशान कोठी में प्रवेश किया। अपने

'राजा बाबू' को देखते ही बूढ़ी रधिया तुरन्त ही इन सब का स्वागत करने दौड़ पड़ी। उसकी ख़ुशी का इस समय ठिकाना ही क्या था—बूढ़ी की पुरानी आँखों में मानों नई ज्योति उतर आई थी। वह ख़ुश थी—उतना ही ख़ुश जितना कि माँ अपने बच्चे को देखकर होती है।

बीसवां परिच्छेद

मिस्टर जयमोहन निगम डिप्टी कलक्टर का बड़ा लड़का विजयमोहन निगम जब कलकत्ता के मेडीकल कालेज में डाक्टरी पढ़ रहा था उन्हीं दिनों उनकी क्लास में एक लड़की भी डाक्टरी पढ़ रही थी। लड़की बहुत सुन्दरी, सुशीला और सुशिक्षिता थी। विजय मोहन भी उससे कम न थे और यही कारण था कि उन दोनों में परस्पर विशेष मित्रता हो गई थी। उनकी घनिष्ठता दिन प्रति दिन इतनी बढ़ती गई कि अन्त में एक-दूसरे को शादी करने के लिये भी वचन बद्ध होना पड़ा। दोनों का प्रेम पराकाष्ठा को पहुँच चुका था।

डाक्टरी पास करने के बाद एक साथ ही दोनों कालेज से निकले और दोनों ने एक ही साथ मिलिटरी के डाक्टरी-विभाग में नौकरी कर ली। सोचा था दोनों साथ ही साथ रहेंगे परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका। थोड़े ही समय बाद मिस्टर विजय मोहन सरकारी हस्पताल के इन्चार्ज बनाकर बर्मा भेज दिये गये और वह बेचारी किसी दूसरी जगह भेज दी गई लेडी डाक्टर बना कर। मनुष्य का सोचा हुआ पूरा ही कब होता है? इतनी दूर अलग-अलग होने पर भी उनका प्रेम कम नहीं हुआ—पत्र व्यवहार चलता ही रहा।

पूरा एक वर्ष व्यतीत होने पर मिस्टर विजयमोहन की बदली रायपूर मिलिटरी के मेडिकल-विभाग में हो गई। इस बार वे केवल डाक्टर ही नहीं रह गये थे बल्कि कैप्टन विजयमोहन निगम के नाम से प्रसिद्ध हो कर आये थे। समस्त डाक्टरी विभाग के अफ़सर होने के कारण सभी उनका आदर सत्कार करते—किसी को भी उनकी आज्ञा टालने का साहस नहीं होता था। बड़े प्रतिभावान एवम् प्रभावशाली व्यक्ति थे। परन्तु इतनी मान-प्रतिष्ठा होने पर भी अभिमान उनमें लेशमात्र को भी नहीं था।

रायपुर आते ही अपने विभाग की भली प्रकार उन्होंने जांच पड़ताल की। डाक्टर पाल के अनेक काम में उन्होंने त्रुटियां पाईं—उनमें से कई त्रुटियां तो ऐसी भीषण थीं कि जिन्हें देख कर और कोई अफ़सर होता तो उसी दिन डाक्टर पाल को नौकरी से अलग कर देता परन्तु कैप्टन निगम जैसे सज्जन अफ़सर ने उन्हें भविष्य के लिये केवल चेतावनी ही देकर साव-धान कर दिया। दूसरों को क्षमा करना वे ख़ूब सीखे थे। एक सप्ताह के भीतर ही यत्र-तत्र-सर्वत्र उनके गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी।

स्त्री-विभाग का निरीक्षण करते समय उन्होंने वहाँ की लेडी डाक्टर के बारे में पूछा। पहले तो डाक्टर पाल ने सोचा कि कह दें—छुट्टी गई हैं; परन्तु फिर ख़्याल हुआ कि कहीं असली भेद न मालूम हो जाये जिससे मामला और भी ख़तरनाक

हो जाने का डर है। बड़े यत्न से अपने मन की उद्विग्नता को दबा कर उन्होंने कहा, "लेडी डाक्टर भाग गई है।"

"भाग गई है?" कप्तान ने आश्चर्य से पूछा, "क्या बिना सूचना के कहीं भाग गई है?"

"जी! जाते समय उसने कोई सूचना नहीं दी है।" डाक्टर पाल ने कहा।'

"आपने उसकी रिपोर्ट लिखी है कहीं?" कप्तान ने पूछा।

"अभी नहीं।" डाक्टर पाल ने डरते-डरते उत्तर दिया।

"अभी नहीं?" मानों चिहुँक पड़े कप्तान साहब, "कह क्या रहे हो डाक्टर? ऐसा करके मिलिटरी के नियमों का उल्लंघन नहीं किया है क्या तुमने? बताओ, बताओ डाक्टर! क्या सोच कर तुमने ऐसा किया?"

डाक्टर पाल के होश उड़े जा रहे थे। जिस बात का डर था उन्हें वही हुआ दुर्भाग्य से। बड़े साहस से रुक रुक कर वे बोले...

"अपने विभाग की बदनामी न हो इसी ख्याल से मैं ने ऐसा किया सरकार!"

"ओ! तुम बिल्कुल निकम्मे आदमी हो डाक्टर!"

गुस्से में दाँत पीसते हुए कप्तान साहब कमरे में इधर-उधर घूमने लगे। डाक्टर पाल के काम से वे बहुत असन्तुष्ट हो चुके थे—जी में आता था अभी बरखास्त कर दें; परन्तु फिर कुछ सोच कर वे चुप हो रहे।

थोड़ी देर बाद उन्होंने पुनः पूछा, "नर्स कितनी हैं यहाँ ?"

यह दूसरी बिजली गिरी डाक्टर पाल पर। संभल कर उत्तर दिया उन्होंने—"अभी तो केवल दो नर्सें ही रक्खी गई हैं सरकार !"

"दोनों मौजूद हैं इस वक्त यहाँ ?" उन्होंने पूछा।

"जी नहीं उनमें से एक आजकल मौजूद है।"

"और दूसरी ? वह भी शायद लेडी डाक्टर के साथ ही भाग गई है ?"

"जी" अत्यन्त क्षीण स्वर में केवल इतना ही निकला डाक्टर पाल के मुख से। भय और लज्जा से उनका कण्ठ एक दम सूख सा गया था।

कप्तान विजयमोहन ने फाऊन्टेनपेन से अपनी डायरी में कुछ लिखा; और तब आँख उठा कर डाक्टर को देखते हुये बोले।

"आज सन्ध्या होने से पहले पूरी रिपोर्ट लिख कर मुझे देनी होगी—समझे ? जाओ, अभी से जा कर लिखनी आरम्भ कर दो।"

"जो आज्ञा।" कह कर ही डाक्टर पाल तुरन्त वहां से चले गये। इस समय उनकी अवस्था बड़ी शोचनीय हो रही थी—जान पड़ता था मानों दीर्घ-काल तक रोग शय्या पर पड़े-पड़े उनका यह हाल हो गया है।

उनके जाने के बाद कप्तान विजयमोहन दफ्तर में आकर एक कुरसी पर बैठ गये और विनोद नामक कम्पाउण्डर को बुला कर डाक्टर पाल और लेडी डाक्टर के सम्बन्ध में बात-चीत करने लगे।

विनोद वैस ही स्वभाव का भीरु तथा सरल प्रकृति का था। जो कुछ वह जानता था सब एक-एक करके उन्हें बता गया। वही सब बातें जो उसने एक दिन कुंवर साहब को बताई थीं आज इन्हें भी कह सुनाई।

सब बातें सुनकर कप्तान साहब एक अनोखे विचार सागर में ग़ोते लगाने लगे। लेडी डाक्टर का नाम सुनकर उनके मन में एक प्रबल आशा का संचार हुआ था; उसे देखने की उन्हें उत्कट अभिलाषा थी, पर हाय! उनकी जागृत इच्छाओं पर एकदम से तुषारपात हो गया था। अप्रतिभ से हो वे चुपचाप बैठे रह गये। उनका मन चंचल हो उठा था—यदि अपनी प्रतिभा का उन्हें कुछ भी ख़याल न होता तो वे इसी समय उसे ढूंढने के लिये वहां से निकल पड़ते पर करते क्या बेचारे! मजबूर थे।

———

इक्कीसवां परिच्छेद

आज कुंवर सुरेन्द्रसिंह की कोठी में बहुत चहल-पहल है। इतनी रौनक़ लोगों ने वहाँ कभी नहीं देखी थी। कोठी का प्रत्येक कमरा बड़ी सुन्दरता से सजाया गया था। बग़ीचे और दर्वाज़े पर धारीदार काग़ज़ों की झंडियां बांधी गई थीं। कोठी के चारों तरफ़ दूर-दूर तक सफ़ाई करवा के पानी छिड़कवा दिया गया था। मुख्य-द्वार पर बड़े-बड़े केलों के बीच में सुनहरे अक्षरों से लिखा हुआ 'स्वागतम्' दूर से ही देखने वालों की आंखों में चकाचौंध पैदा कर देता था। अनेकों ठाठदार मनुष्यों से सारी कोठी भरी पड़ी थी।

बाहर का प्रबन्ध धीरेश बाबू के हाथ में था और कोठी के भीतर का बूढ़ी रधिया और श्यामा के हाथ में। सभी अपने अपने काम को बड़ी तत्परता, फुर्ती और सावधानी से करते थे। पचास बरस की बूढ़ी रधिया में भी आज मालूम नहीं कहां से इतनी फुर्ती आ गई थी कि हर काम को विद्युत गति के समान करती थी, स्वयं भी करती और दूसरों से भी कराती—इतना ही क्यों यदि दूसरों के काम में कोई ग़लती देखती तो तुरन्त टोक बैठती और उसी क्षण उसे ठीक से करा के छोड़ती। आज ग़ज़ब की फुर्ती आ गई थी उसमें।

बूढ़ी रधिया ने जिन कुंवर साहब को अपनी गोद में खिला कर इतना बड़ा किया था आज उन्हीं कुंवर साहब के विवाह का शुभ दिवस है। शहर के गण्यमान्य प्रतिष्ठित लोगों को इसमें सम्मिलित होने के लिये आमन्त्रित किया गया था। धीरेश बाबू भी ख़ुशी से फूले नहीं समाते थे। आज उनके परम उदार मित्र कुंवर सुरेन्द्रसिंह की शादी का दिन है ना? क्यों न फिर वह ख़ुशी से फूला समाता? और फिर शादी भी किस के साथ? वही लेडी डाक्टर मीना! जिसके कारण उन्होंने जंगलों और पहाड़ों में इतना कष्ट उठाया था।

कोठी के मुख्य-द्वार से लगा कर रास्ते के दोनों तरफ़ केलों की पंक्तियां लगाई गई थीं। जिनके ऊपर रंग-बिरंगे काग़ज़ की झंडियां हवा में लहराती हुई बड़ी भली मालूम देती थीं। बाग़ के हरे-भरे लान पर एक बड़ा-सा शामियाना ताना गया था, जिसके नीचे क़ायदे से रक्खी हुई कुरसियों पर शहर के बड़े-अफ़सर तथा अन्य प्रतिष्ठित महानुभाव बैठे हुए कुंवर साहब के शुभ विवाह में सहयोग दे रहे थे। बीच में मिस मीना और कुंवर साहब भी फूलों के हारों से लदे हुए बैठे थे। इस समय मीना वस्त्राभूषणों से सजी हुई और भी सुन्दरी लग रही थीं—बहुत-सी आई हुई स्त्रियाँ उसकी रूप-छटा पर डाह कर उठती थीं। वह थी भी अनुपम सुन्दरी ही तो।

इतने में एक छोटी, पर अत्यन्त सुन्दर नई कार दरवाज़े के सामने आकर रुकी और उसमें से एक हृष्ट-पुष्ट सुन्दर नव-

युवक सैनिक वेष में नीचे उतर कर मन्थर गति से चलता हुआ विवाह मण्डप की ओर आया। उपस्थित लोगों में फुस्फुसाहट होने लगी—"कैप्टेन विजयमोहन! डायरेक्टर आफ मिलिटरी हैल्थ डिपार्टमेण्ट आये हैं।" और तब बहुत-से लोगों ने उठ कर एक साथ ही जोरदार स्वागत किया, और बड़े आदर से लाकर उन्हें एक कुरसी पर बैठाया।

परन्तु यह क्या? उन्हें देखते ही मीना की विचित्र दशा हो गई। एक ही दृष्टि में सारे शरीर में उसके बिजली-सी दौड़ गई, हृदय के भीतर एक जोरदार स्पन्दन होने लगा। वह और अधिक वहां बैठी न रह सकी, बैठी-बैठी ही वह मूर्छित-सी होने लगी। मन न जाने कैसा-कैसा करने लगा और वह तुरन्त ही उठकर वहां से चुपचाप एक कमरे के भीतर चली गई। अभी तक कुंवर साहब का ध्यान कैप्टन निगम की ओर था, पर मीना के उठ कर वहां से चले जाने के बाद उनका ध्यान उस तरफ़ गया।

उसके इस प्रकार चले जाने का कारण कुंवर साहब की समझ में कुछ भी न आया और जब काफ़ी देर तक भी वह वहां वापस नहीं आई तो उन्हें और भी आश्चर्य हुआ। कारण जानने के लिये वे स्वयं उठ कर कमरे में गये। दो-तीन कमरों में ढूंढने के बाद अन्त में उन्हें एक कमरे के भीतर पलंग पर पड़ी हुई मीना फ़फक-फफक कर रोती दिखाई दी। उसे इस दशा में देख क्षण भर तक तो वे *किंकर्त्तव्य-विमूढ़* से हो देखते ही

रह गये; परन्तु फिर साहस करके उन्होंने बड़े प्यार से सहानु-भूति पूर्ण शब्दों में पूछा।

"क्या हुआ मीना? हो क्या गया तुम्हें इतने में? बोलो ना।"

कुछ देर बाद चित्त स्थिर करके वह बोली, "मुझे क्षमा कीजिये। मैं बड़ी अभागिन हूँ—आप जैसे देवता के चरणों में रह कर······।"

आगे वह कह न सकी फूट-फूट कर रोने लगी। कुंवर साहब पूरा मतलब न जान कर भी उसकी यह करुणा पूर्ण अवस्था देख नहीं सके। स्नेह-सिक्त नम्र शब्दों में उन्होंने पुनः पूछा, "हुआ क्या आखिर! पूरी बात बताओ ना।"

रोते हुए ही वह बोली, "मैं बड़ी पापिष्ठा हूँ कुंवर साहब! आपकी दया, और आपकी सहानुभूति से प्रेरित हो कर सत्य बात कहने का मुझे साहस ही न हुआ। मैं आपकी सेवा में रहने योग्य नहीं हूँ—बड़ी हत-भागिनी हूँ मैं। जल्दी से जल्दी किसी दूर देश में भाग जाना चाहती हूँ।"

कुंवर साहब बोले, "असली बात तुम अब भी छिपा रही हो मीना! बात क्या है? साफ़-साफ़ कहो, तुम्हारा दुःख अवश्य दूर करूँगा।"

उसने बड़े साहस से कहा, "कैप्टन विजयमोहन मेरे कालेज के मित्र हैं, आपस में विवाह करके एक साथ रहने का हम एक दूसरे को वचन भी दे चुके थे।"

"बस इतनी सी बात !" कहकर कुंवर साहब गंभीरता पूर्वक कुछ सोचने लगे फिर तुरन्त ही वे बोले, "आज से तुम मेरी धर्म-बहन हो मीना ! जिस विवाह-मण्डप में मेरी शादी होने वाली थी अब उसी में खुशी-खुशी मैं अपनी बहन की शादी करूँगा। अभी जाकर कैप्टन से सब तय करता हूँ।"

मीना ने कुछ कहने के लिये मुख खोला ही था कि इतने ही में कुंवर सुरेन्द्रसिंह ख़ुसी-ख़ुशी उछलते-कूदते वहां से भाग कर बाहर चले गये।

दूसरी क्षण ही लोगो ने देखा उसी विवाह मण्डप में कैप्टेन बिजयमोहन निगम की बगल में मिस मीना—वस्त्राभूषणों से सजी सजाई मीना नव-वधू के रूप में बैठी हुई छिपी-दृष्टि से कुंवर साहब के प्रफुल्ल एवं उत्साहित चेहरे को देख रही थी। उनका अद्भुत पराक्रम, अटूट सहानुभूति एवम असीम उदारता की प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति मुक्त कण्ठ से प्रसंशा कर रहा था। कैप्टेन निगम और मीना दोनों ही आयु-पर्यन्त आभारी रहेंगे।

आह कुवर सुरेन्द्रसिंह ! कितना दयालु, कितना विशाल और कैसा उदार था तुम्हारा हृदय।

समाप्त